म० गाँधी का समाजवाद

मूल लेखक

डाक्टर बी० पट्टाभि सीतारामैया

अनुवादक

श्रीयुत जगपति चतुर्वेदी, हिन्दी-भूषण, विशारद

विक्रेता—

मातृ भाषा मंदिर, दारागंज, प्रयाग।

प्रथमबार } १९४० { मूल्य अजिल्द १॥)

प्रकाशक—

राष्ट्र भाषा मन्दिर

मुद्रक—

नारायण प्रसाद,

नारायण प्रेस, प्रयाग।

भारत का आर्थिक शोषण

(लेखक डा० पट्टाभि सीतारामैया)

'भारत में अंग्रेजी राज' के यशस्वी लेखक, कर्मवीर श्रीयुत सुन्दर लाल जी मूल पुस्तक के सम्बंध में लिखते हैं–

कांग्रेस वर्किंग कमेटी के योग्य मेम्बर डाक्टर बी० पट्टाभि सीतारामैया देश के बड़े से बड़े राजनैतिक नेताओं में से हैं। वह अर्थ शास्त्र और राजनीति शास्त्र के भी पूरे पण्डित हैं। उन्होंने अंग्रेजी में इन विषयों पर कई छोटी छोटी अच्छी किताबें लिखी हैं। उनकी The Economic Conquest of India or The British Empire Ltd. अभी हाल में प्रकाशित हुई है। इसमें उन्होने पिछले १५० वर्ष के अन्दर हिन्दुस्तान में अंग्रेजों की आर्थिक नीति का खाका खींचा है और नमक के महसूल, कपड़े के व्यापार, रुई की चुंगी, ओटावा का मशहूर समझौता, रेल, जहाज, कोयला, सिक्के, नोट, टकसाल, विदेशों के साथ हुंडियावन, बट्टा, डाक महसूल, बङ्क, चेक, बीमा कम्पनियां, बिजली, फौज वगैरा के बारे में अंग्रेजों की नीति जो शुरू से रही

है और जो अब तक है उसे साफ २ और तफसील के साथ २ बयान करते हुये यह दिखाया है कि किस तरह इन सब महकमों के इन्तिजाम में भारत के साथ खुला अन्याय किया जाता है और किस तरह इस देश से ज्यादा से ज्यादा धन लूटना ही अंग्रेज़ी राज्य का सब से बड़ा उद्देश्य है। इस आर्थिक नीति का ही नतीजा है कि केवल एक कपड़े के ही धन्धे मे जब कि सन् १८०३ तक एक गज कपड़ा भी विलायत से भारत में न आता था इस समय हमारा यह धंधा करीब करीब चौपट है, हमारे करोड़ो कारीगर भूखों मरते हैं और हमारा बाजार विलायती कपड़ो से पटा पड़ा है। लेखक ने यह भी दिखाया है कि सन् १९३५ में जो नया कानून पास हुआ है इसके अनुसार कहा जाता है कि शासन के नये अधिकार भारतवासियो को दिये गये हैं उसमे भारत की इन आर्थिक बेड़ियों को और ज्यादा जोरो के साथ कस दिया गया है। और आइन्दा के लिये इसका पूरा इन्तजाम कर दिया गया है कि हिन्दुस्तान का अपना व्यापार या अपने उद्योग धन्धे उससे ज्यादा पनपने न पावें जितना कि अंग्रेजी कौम के लिये जरूरी है और भारत की यह भयंकर लूट बराबर जारी रहे। मेरी यह पक्की राय है और जबरदस्त ख्वाहिश है कि हर भारतवासी जो अंग्रेजी पढ़ सकता है इस पुस्तक को पढ़ लें। जो अंग्रेज़ी नहीं जानते वह किसी हिन्दुस्तानी भाषा में उसका अनुवाद पढ़ सकें तो जरूर पढ़ें।

—::—

विषय-प्रवेश

भारत अनेक अनुभवों के बीच से होकर गुजर रहा है जिनका सामना अन्य देशों को नही करना पडा। जहां शेष संसार मे प्राचीन और आधुनिक विभिन्न प्रकार की संस्कृतियां और राष्ट्रीयताएं हैं जो उनके भाग्य-निर्माण पर पूर्ण नियंत्रण रखती है, भारत इस बात में बे जोड़ है कि राष्ट्र रूप में उसकी समान प्रगति और उसकी पुरातन सभ्यता विदेशी आक्रमणों के प्रहारों द्वारा आक्रान्त हुई हैं, और इस कारण उससे मुक्ति तथा उद्धार पाना ही भारत का सब से पहला काम रह गया है। विस्तृत रूप मे और अधिक गहराई तक जड़ जमाए हुए इस विदेशी बंधन से मोक्ष पाने के प्रयत्न के कारण ही विचारों और दृष्टि-कोणों में विरोध उठ खडे हुए हैं—नर्म और भिक्षुक वृत्ति के मार्ग, जिनका १९२० तक अनुसरण किया जाता रहा, अब छोड़कर एक युद्ध कला की नई योजना, और युद्ध की एक नई ही पद्धति का अवलंबन किया गया अतएव यह स्वाभाविक हो था कि ऐसी युद्ध-नीति और युद्ध की कार्य-कारिता के संबंध में संदेह और कठिनाइयां उठाई गई होतीं और इसमें भी किसी को संदेह नहीं हो सकता कि वे अधिक से अधिक ईमानदारी और सच्चाई की भावना से ही उठाई गई होंगी। इसलिए विदेशी शक्ति का सामना कर सकने का उपाय विवाद का विषय ही नहीं हो गया है, बल्कि उस युद्ध का लक्ष्य पदार्थ ही भीषण विवाद का केन्द्र बन गया है, जो विदेशी शक्ति को अधिकार-च्युत करने और उसकी जगह वह स्थापित करने के लिए करना पडता है, जिसे हम सब लोगों ने संक्षिप्त रूप से स्वराज्य शब्द से संबोधित करना स्वीकार किया है। वास्तव मे दोनों बातें एक ही संघर्ष के दो प्रदर्शन है। हम

भारत से ब्रिटिश साम्राज्य को हिंसा मार्ग से निर्मूल करेंगे वा अहिंसा मार्ग से ? यह इतनी व्यापक समस्या है, कि इसमें यह आनुषंगिक समस्या भी सन्निविष्ट और अंतर्भूत है कि नया स्वराज्य क्या रूप धारण करेगा। उस स्वराज्य के रूप का अनुमान करने में कोई कठिनाई नही हो सकती जो भारत में एक खूनी क्रान्ति द्वारा स्थापित किया गया होता अथवा वह जो सत्याग्रह के प्रयोग और अहिंसा की शक्ति से स्थापित किया गया होता। थोडे ही समय के प्रयोग-काल में अहिंसा को ठोस सफलता प्राप्त होने पर भी नई पीढ़ी के एक दल को इसकी शक्ति के विषय मे अत्यधिक सन्देह हो रहा है, और इसलिए वे इसके द्वारा निर्धारित निग्रहों की कठोरता कम करने की अधिक समय की संकल्प-विकल्प की इच्छा के प्रभाव में पड़े हैं। यह देखने में अधिक कल्पना की आवश्यकता नही कि कोई भी नई शक्ति उस पीढ़ी द्वारा तुरन्त मान्य नही होती जिनमें उसका तुरन्त ही प्रचार हुआ होता है। जब भाप के इंजिन का अविष्कार हुआ तो उसके जन-प्रिय होने में समय लगा। आज भी ग्रामीण जुलाहा उस उडन-ढरकी को सदेह की दृष्टि से देखता है, जिसका प्रयोग उसके हाथ के करघे में किया गया है। ऐसे भी लोग हैं जो आज भी रेलगाडी, स्टीमर और हवाई जहाज द्वारा यात्रा करने मे भय खाते हैं। वास्तव में ये अक्सर धोखा दे जाते है। क्योंकि क्या हम आए दिन रेलगाडियों के लड जाने, दूसरे दिन जहाजों के पानी मे डूब जाने, और तीसरे दिन हवाई जहाज के टूट फूट कर गिर जाने का समाचार नही सुनते ? फिर भी समय के साथ इन वाहनों की लोक-प्रियता बढ़ती ही जाती है। इसी तरह ऐसे लोग थे जिन्होंने मिट्टी के तेल का चिराग जलाना स्वीकार न किया जब इसने रेंडी के तेल के दिए का स्थान लिया, और न गैस को ही स्वीकार करना चाहा जब इसने मिट्टी के तेल का स्थान ग्रहण किया और अंत में बिजली पर नाक भौ सिकोडा जब इसने तेल और गैस दोनों को पीछे कर दिया।

अंतर्राष्ट्रीय भाग्य-निर्णय मे निर्णायक शक्ति रूप में पाशविक बल के हम लोग इतने अभ्यस्त हो गए हैं कि उसकी जगह अहिंसा के लेने की सम्भावना को हमारा हृदय स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं मालूम होता। एक आक्रामक और निश्चित शक्ति के रूप में अहिंसा एक पूर्ण दर्शन है और इसकी युद्ध-नीति का विकास प्रयोगों के बाद प्रयोगों के होते जाने पर होता जायगा जो वास्तव मे सत्य के प्रयोग बन जाते है।

चम्पारन १९०७ ई० मे इस तरह का एक प्रयोग था। तब १९१८ में खैरा, १९२१ में बोरसद, १९२७ में गुरु का बाग, १९२८ में बारदोली, उसके बाद १९३० का महान नमक सत्याग्रह, १९३८ में हरिजनोद्धार तथा अंत मे १९३७—३८ मे धारा-सभा-कार्य-क्रम सत्याग्रह के चिरस्थायी सिद्धान्त के स्फूर्तिदायक संरक्षण में कार्यान्वित हुए। यह नया व्रत, यह पूर्ण स्फूटित दर्शन अभी प्रयोग काल मे है, किन्तु इसने जो सफलता प्राप्त की है, वह भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य ऐसी प्रबल-शक्ति के सामने भी अपनी शक्ति और कार्य-शक्ति को प्रमाणित करता है। तब गान्धी-वाद की जगह दूसरे वादों को स्थान देने की क्या आवश्यकता है जो योरप को छिन्न-भिन्न कर रहे है?

जब हमारे समाजवादी बन्धु समाजवादी रूप की शासन-व्यवस्था का बड़े ज़ोर से समर्थन करते हैं तो हमारे मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या यह केवल बेबसी की बात न होगी क्योंकि यदि क्रान्तिकारी अहिंसा का व्रत नही ग्रहण करते और ब्रिटिश शक्ति को हिंसा द्वारा पराभूत करते है तो उन्हें जनता से न तो यह पूछने की आवश्यकता होगी न वह पूछेंगे कि स्वराज्य की शासन-प्रणाली कैसी होनी चाहिए। इसके विपरीत यदि हम अहिंसा और सत्याग्रह द्वारा अपनी ही शक्ति से विजय प्राप्त करने में समर्थ होंगे, तो हमें अधिक सन्देह में रहने की आवश्यकता न होगी क्योंकि जब हम समाजवादी सिद्धान्तों का पुनरुद्धार करेंगे जिन पर भारतीय समाज ने अपनी प्राचीन नींव अच्छी तरह और यथार्थ रूप

में स्थापित की थी तो हमे उसे आधुनिक अवस्थाओं के अनुरूप बना लेना होगा जिससे केवल अधिकतम सख्या के व्यक्तियों को अधिकतम सुख ही न मिले, बल्कि भारत के प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बच्चे को मानव-सुखों की आवश्यकताओं का अल्प परिमाण निश्चित करना पडेगा। इन दोनों लक्ष्यों के मध्य इस अतर को सक्षेप मे आधुनिकवाद और गाधीवाद का अंतर कहा जा सकता है। गांधी जी ने जीवन का कोई नया सिद्धान्त नही निकाला है, बल्कि आधुनिक समस्याओं मे केवल प्राचीन सुलझावों का पुनः प्रयोग किया है। उन्होंने भारत को आदर्श नही प्रदान किया है बल्कि साधन प्रदान किया है। आदर्श पहले से ही युगों से विद्यमान था। हा उस पर मैल अवश्य बैठ गई थी और वह उस बर्बादी के कूडा कर्कट से भर गया था जिसमे उसे भूतकाल मे फस जाना पडा था। वास्तव मे वह था। वह लोगों की दृष्टि से ओझल हो गया था किन्तु उचित मार्ग से खोज किए जाने पर उसका पुनः अनुसंधान हो सका। जिसे हम गाधीवाद कहते है, वह इसी आदर्श का पुनः कथन है जिसमें आधुनिक युग की सभी परिवर्तित स्थितियों के अनुसार कुछ हेर-फेर कर दिया गया है। इस आदर्श की मुख्य विशेषताए इस पुस्तक के पृष्ठों में दी गई है जो प्रायः लेखों का पुनर्मुद्रण है जो पिछले सात वर्षों मे लिखे गए थे। ये समाज के दो रूपों का स्पष्ट अतर चित्रित करते हैं जिनमे से एक मे सामाजिक-आर्थिक रूप से विभाग किए गए हैं जिनमें अनेक वर्गों मे भी सर्वदा शक्ति का सामजस्य स्थापित रहता है और दूसरा समाज अनवरत बहाव की अवस्था मे है और जिसमे चिरतन विश्वास की धाराए जीवन की कडाही में प्रतिस्पर्द्धा और हिंसा की ज्वाला के ऊपर उबल रही है और उनमें नीचे की पर्तें अपने ऊपर की पर्तों तक पहुँचने और फिर उससे भी ऊपर उठने का प्रयत्न करती हुई ज़ोर मारती और दबाव डालती हैं। आज एक सर्व-शक्तिशाली राष्ट्र और मानव व्यक्तित्व के मध्य संघर्ष है। हम इस बात के लिए प्रयास कर रहे हैं कि

"पारस्परिक सहानुभूति और सहयोग के आधार पर स्थित सामाजिक रचना ही उदार पंथ वालों के स्वार्थ, व्यक्तिवाद और सर्वशक्तिमान राष्ट्र के उत्पीड़क सामूहिकवाद का एक मात्र सुलझाव है।" "उदार पंथी पूंजीपतियों के अनियंत्रित व्यक्तिवाद" और "समाजवाद तथा साम्य-वाद द्वारा व्यक्तिगत अधिकारों के पूर्ण लोप" के मध्य हमें कुछ सीमा तक व्यक्तिगत जायदाद का अधिकार स्वीकार करना पड़ेगा, साथ ही मुख्य उद्योग-धंधों और उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण करना होगा क्योंकि व्यक्तिगत जायदाद की बुराई का इलाज उस बुराई के विरोध वा प्रतिबंध मे है न कि अधिकार का ही लोप करने में।

भारतीय राजनीति में समाजवादी भावनाओं का विकास थोड़े समय से हुआ है, सन् १९१८ ई० में जब लखनऊ के सर्व-दल सम्मेलन में पं० जवाहर लाल नेहरू ने समाजवाद पर विस्तृत भाषण दिया तो उसे सुन कर अवध के ताल्लुकेदार घबड़ा गए, जिनके प्रतिनिधि वहां पर मौजूद थे और इस कारण नेहरू रिपोर्ट मे यह दफा जोड़नी पड़ी कि वैध तरीकों से प्राप्त जायदाद मालिकों के आधीन ही निश्चित रूप से रहने दी जायगी। मार्च १९३१ ई० के गान्धी-इर्विन समझौते की महान घटना द्वारा सत्याग्रह की उल्लेखनीय सफलता प्रदर्शित होने के बाद मार्च १९३१ ई० मे करांची के कांग्रेस अधिवेशन में एक सामाजिक-आर्थिक कार्य-क्रम बनाया गया, जिससे ज्वार की वृद्धि को विश्राम मिला, किन्तु १९३२ मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ होने और भारत मे अंग्रेजों द्वारा असदिग्ध भाव धारण किए जाने के कारण जेल, से लौटे हुए अंग्रेजी शिक्षित वर्ग के कैदियों मे अहिंसा मे अविश्वास और उदासीनता छा जाने के कारण समाजवाद और साम्यवाद का एक शुष्क कार्य-क्रम कार्यान्वित करने की बात उठी, जो सत्याग्रह के विपरीत साधनों के प्रति स्पष्ट पक्षपात द्वारा पूर्ण किया जाने वाला था। इतिहास की भौतिक व्याख्या सत्य और अहिंसा के रहस्यमय और आध्यात्मिक सिद्धान्तों के

आत्मा-कला, और सौदर्य सयोगवश केवल भाववाचक शब्द हैं, साधारण आदमी को वे कोई ठोस चीज़ नही जान पड़ते। वास्तव मे उनको आज की सभ्यता के मिथ्या तर्क मे फसे लोगो की अपेक्षा निपढ व्यक्ति अधिक समझता है। पश्चिम ने कलों की मार और पूर्वी सादगी, सौदर्य, पवित्रता तथा आध्यात्मिकता के प्राचीन आदर्शों के ऊपर होड़ से 'शिक्षा' और 'सस्कृति' शब्दो को सघर्ष, पैसे और शक्ति वाले सबसे मोटे आदमी की ही दूसरों के मुकाबले विजय, शक्ति तथा प्रतिद्वन्दिता आदि का पर्यायवाची बना दिया है। देश ने अपनी प्राचीन प्रतिमा को फेक दिया है और विचित्र देवताओ को पूजना प्रारम्भ किया है, हमको नित्य विदेशी चीजे इस्तेमाल करना, और पश्चिमी विचारो मे डूबना सिखाया जा रहा है।

शिक्षित भारतीय का घर

इन अवस्थाओ मे राष्ट्रीयता परिहास की बात हो गई है। हमे इसके प्रमाण की आवश्यकता नही। हम शिक्षित भारतीयो के घर मे जाकर देखें तो उसके घर बार, पहने ओढने, तथा खाने पीने तक की चीजें सभी विलायत की बनी दिखाई पड़ेगी। घर के सजावट की सब चीजे, बच्चो के खिलौने, आदि सब विलायती होगी। घर का सब ढाचा, रहन-सहन विलायती होगी।

उन्हे सबेरे से शाम तक विलायती चीजो को इस्तेमाल करते हुए हम नित्य देख सकते हैं। कघे, ब्रश, साबुन, वेसलिन, बटन और चेहरे मे लगाने की नफासत की सभी चीजे, मोजे, मोजेबन्द, क्लिप, बटन, पेटी, कालर, टाई, बूट, हैट, प्याले, प्यालिया, चम्मच, काटे, चीनी मिट्टी के बर्तन, चाकूकैंची, सब विलायती होंगी। विलायत की बनी खाने पीने की चीजे, उदाहरणार्थ, फ्रास का कहवा, आस्ट्रेलिया का दूध, जावा की चीनी, चेशायर का नमक, इगलैंड की चटनी मुरब्बा,

खाना बनाने का चूल्हा प्राइमस स्टोव तक बिल्कुल विलायती होगा। भोजन की सामग्री और उसके तैयार करने के सब सामान सिर्फ पानी छोड़ कर विलायती ही होंगे। पानी की जगह भी विलायती तरह तरह की शराबे शिक्षित, पश्चिमी दिमाग वाले व्यक्तियों के गले उतरती हैं। डीज़ लालटेन और पेट्रोमैक्स बत्ती, कलई के बर्तन, धातु चमकाने के ब्रासो पालिश विलायती दिखाई पड़ेंगे। आमोद-प्रमोद की चीजों मे हाकी स्टिक, टेनिस रैकेट, क्रिकेट और वैडमिन्टन के वैट, पिंगपांग गेंदे, तथा ताश विलायती ही होंगे। कागज़, कलम, दावात, निब, चश्मा, फीता, तौलने की मशीन, आदि विलायती ही होंगी। मेज़, कुर्सी, शीशे के फ्रेम आदि भी विलायती लकड़ी और तख्तों के बने होंगे। फर्श को बनाने वाले संगमरमर तथा चीनी मिट्टी के टुकड़े और खपड़ैल विलायती, ताले, सिटकिनी, कबजे, पर्दे, छड़ी, छाता, चित्र, हारमोनियम, ग्रामोफोन, रेकार्ड, सारंगी, पियानो, आदि भी विदेशी ही होंगे। कपड़े लत्ते, दवाए, बच्चों के खाने की चीजे, उस्तरे, ब्लेड्स, मक्खन, संरक्षित फल आदि भी विदेशी ही होंगे। इतना ही नहीं हम लोगो के गरीब मजदूरी पेशे वाले लोगों के घरों मे भी विलायती चीजो की भरमार मिलेगी। आरी, बसूला, हथौड़ा, निहाई, सुई, तागे, सीने की मशीन, चाकू, कैंची, आदि सब विलायती चीजें होंगी। धनी घरों की मोटर, लारियों, हवाई जहाजों आदि की तो बात ही दूर है।

कलों की मार

हम लोगों की लड़ाई असल मे बड़े पैमाने के उत्पादन से है जो धनी को तो और धनी बनाता है और गरीब को और निर्धन। हमारा लक्ष्य धनी के पास और धन पहुंचाने और ग़रीब के पास की बची रक़म भी छीनते जाने का नहीं है। किन्तु कलों का यही

नतीजा होता है। एक उदाहरण लीजिए। एक बोरा धान हाथ से कूटे जाने पर उसे कूटने वाली तीन औरतों को फी आदमी एक सेर चावल और एक आना मज़दूरी मिलती है। उनका काम मुश्किल होता है किन्तु मन उचाटने वाला और बहुत देर का नहीं होता। वे तीन बजे तड़के आकर दिन के तीन बजे काम खतम कर छुट्टी पा जाती हैं। छुट्टी पाकर वे गाती बजाती, गप शप करती खुशी खुशी घर जाती हैं। इस तरह हर एक औरत अपनी मिहनत की कमाई से खुद अपना, अपने पति का तथा दो बच्चों-कुल चार आदमियों का निर्वाह करती हैं। इस तरह एक बोरा धान ३ × ४ वा बारह प्राणियों के निर्वाह का साधन है।

अब कल की बात लीजिए। धान कूटने की एक मिल रोज़ ६०० बोरा धान कूटती, फटकती है। उसमे कुल ४० मज़दूर और एक आदमी की पूजी लगी होती है। ४० मज़दूरों का अर्थ ४० × ४ अर्थात् १६० आदमियों से हुआ जिनका निर्वाह उनकी मज़दूरी से होता है। यदि ६०० बोरे हाथ से कूटे गए होते तो केवल १६० आदमियों की जगह ६०० × १२ अर्थात् ७२०० आदमियों का निर्वाह हुआ होता किन्तु मिल के कारण करीब करीब सात हज़ार आदमियों के निर्वाह का साधन मारा गया और उसकी जगह मिल के अकेले मालिक को मुनाफ़ा मिला और शेष रुपया पेट्रोल, तेल वा कोयला, टैक्स, रिश्वत, कलो में लगी पूजी के व्याज, पुराने पुर्जों की जगह नए पुर्जे लगाने के खर्च और कल की निरंतर घिसाई मे पूंजी की कमी होने मे ही खर्च हुआ। इस तरह मिल के मालिक को पूंजी की जगह और रुपया मिला और विदेश के उस व्यापारी को अधिक मुनाफा मिला जिसने कल बनाई। इस तरह कपड़ों की मिलों, हजारो अन्य चीज़ों को तैयार करने वाली कलों की बात समझी जा सकती है। सवाल यह उठता है कि क्या कलों का बहिष्कार करना आवश्यक है और क्या ऐसा कर सकना संभव है।

विचित्र सत्य

जब गांधी जी ने ग्राम-उद्योगों और हाथ की कारीगरियों की प्रथा प्रचलित करना प्रारम्भ किया तो लोगों ने बड़े विस्मय से पूछना शुरू किया कि क्या कहीं बैलगाड़ी मोटर गाड़ी की दौड़ में ठहर सकेगी। हम लोग कलों के युग मे रहते हैं, जिसमें उद्योग धधों की भारी दौड़, विदेशों मे निर्यात के लिए चीजों का उत्पादन, मंडियों की खोज, राजनैतिक प्रभाव, साम्राज्यवाद तथा सैनिकवाद की धूम है। एक के बाद एक का नंबर आता है। पाश्चात्य देशों ने मडियों की खोज में उपनिवेश, अधीनस्थ राज्य, अपने स्वार्थों और प्रभाव के क्षेत्रों और रक्षित राज्यों की स्थापना की है। किन्तु इन सब का कुछ भी स्थायी फल नही निकला है। ये सब उसे विनाश की ओर ही ले जा रहे हैं।

युद्ध जो पूर्व और पश्चिम में समान रूप से ही भाग्य-निर्णय का अंतिम अस्त्र माना जाता है, आर्थिक रूप से निष्फल सिद्ध हुए हैं। इस शताब्दी के पहले दशक मे ही श्रीयुत नार्मन एंजेल ने भविष्य-वाणी की थी युद्ध में विजित की अपेक्षा विजयी देश की अवस्था ही अधिक खराब होगी। यह कथन विरोधाभास जान पड़ता है किन्तु फिर भी इसमें एक चिरस्थायी सत्य है। और मानों इस कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिए ही पिछला महायुद्ध हुआ था।

पिछले महायुद्ध मे फ्रास और इगलैंड को भारी विजय प्राप्त हुई थीं और उन्होने जर्मनी से क्षतिपूर्ति पाई थी किन्तु ऐसा करने से उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ। इस बात का अनुभव जर्मनी को १८७१ में हो चुका था जब उसने विजयी होकर फ्रास से क्षतिपूर्ति ली थी। क्षतिपूर्ति के लिए जो चीजे जर्मनी द्वारा फ्रास को मिल रही थीं वे या तो फ्रास में खुद तैयार होती थीं या फ्रास मे इंगलैंड से तैयार होकर आती थीं। नतीजा यह हुआ कि फ्रांस को कोयला और कले

तो जर्मनी से मुफ़्त मिलने लगी, अतएव बाज़ार मे उथल पथल मच गई। फ्रास और इगलैंड के कारखाने तो बंद रहने लगे, वेकारी वहुत अधिक वढने लगी और जर्मनी के कारखाने रात दिन खुले रहने लगे, वहा वेकारी का कोई सवाल ही नहीं था, लंदन में जहा वेकारो की सख्या युद्ध समाप्त होने पर १० लाख थी, वहा बढ़ कर २७ लाख तक पहुँच गई और वेकारों को सहायतार्थ दी जाने वाली रोज़ाना ८१ लाख रुपए की रक़म सरकार की जेब से निकलने लगी अर्थात तीन अरब रुपए वार्षिक केवल वेकार वृत्ति रूप मे दिए जाने लगे।

आधुनिक पाश्चात्य अर्थनीति

युद्ध-सगठन वा सैनिकवाद के ये फल हैं। शान्ति के समय का संगठन औद्योगिकवाद हैं, सैनिकवाद जिसका अग्रदूत है किन्तु इंगलैंड के लिए औद्योगिकवाद भी सैनिकवाद की अपेक्षा अधिक लाभकर नहीं सिद्ध हुआ। हम यहा पर इगलैंड की आर्थिक अवस्था पर कलों के कुप्रभाव के परिणाम का अध्ययन करेंगे। सन् १७८३ ई० मे भाप के इजिन के आविष्कार होने और यान्त्रिक वल का उद्योग-धधे में उपयोग होने के बाद से पश्चिमी देशो ने उतनी तेज़ी से उद्योग-धंधों की गति तेज करने की कोशिश की है जितनी उन्हे मडिया मिलती गई हैं, और विदेशों मे निर्यात के लिए माल तैयार कर वे पूर्व में मंडी की तलाश मे निकले हैं। अब हम यह देख सकते हैं कि पूर्व और पश्चिम की जन संख्या मे बराबर का अनुपात है क्योंकि अकेले भारत वर्ष और चीन मे शेष ससार के बराबर ७५ करोड़ की आबादी है। पश्चिमी देश माल तैयार कर एक दूसरे की होड़ में पूर्व में तैयार माल खपाते रहे हैं और चीन जापान अपने शिल्प धधों की वर्बादी वर्दाश्त कर पश्चिम की कलों द्वारा तैयार चीजे खरीदते रहे हैं जो इगलैंड, फ्रास, जर्मनी, कनाडा, जेकोस्लोवाकिया, सयुक्त देश

और अन्य देशों में तैयार होती रही हैं।

स्वावलंबी अर्थनीति

पूर्वी देशों मे ज्यो ही राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हुई त्यों ही उन्होंने इन विलायती चीज़ों के आयात के खतरे को महसूस करना प्रारम्भ किया, और भारतवर्ष के पिछले अहिंसात्मक आन्दोलन ने आयात का खतरा ही नहीं बतलाया बल्कि आयात रोकने का लाभ भी दिखा दिया। जब निरस्त्र भारतीयो ने एक बार संसार के प्रबलतम साम्राज्य को झुका दिया और हिंसा के विपक्ष अहिसा, असत्य के विपक्ष सत्य और अन्याय के विपक्ष न्याय की विजय दिखा दी तो इस पाठ को भारत के पड़ोसी राष्ट्र ईरान, अफगानिस्तान, मेसोपोटामिया, अरब और मिस्र ने भी सीखा। उन्होने भी विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार प्रारम्भ कर दिया। नतीजा क्या होगा?

यदि बहिष्कार सफल हुआ तो पाश्चात्य देशो को अपना तैयार माल बेचने के लिए पूर्व मे मंडी ही नही मिलेगी और वे अपने देशों मे ही एक दूसरे से होड़ कर सस्ती बेचने मे समर्थ नही हो सकते। उदाहरणार्थ डीज़ लालटेन लगभग २ या ३ करोड़ प्रति वर्ष भारत मे आती है। ये सब अमेरिका के संयुक्त देश वा जर्मनी मे तैयार होती हैं। यदि हम इनका मॅगाना बंद कर दे तो वे इन्हे बनाना बंद कर देगे क्योकि योरप का प्रायः प्रत्येक देश ऐसी चीजें अपने लिये तैयार करता है। इसलिए उन्हे इनका उत्पादन इतनी सीमित करना पड़ेगा जितने की उनके देश में ही खपत हो। विदेशों के निर्यात के लिए उत्पादन रोकना पड़ेगा। जब उनके पास निर्यात करने के लिये कोई चीज़ नही रहेगी जिससे वे अपने देश मे आयात की कीमत चुका सके तो उन्हे आत्मनिर्भरता का आश्रय लेना पड़ेगा।

वास्तव मे यही स्वाभाविक परिणाम होगा क्योंकि जहा विदेशी

राष्ट्र भारत मे ७२ करोड़ रुपए का कपड़ा निर्यात कर रहे हैं वहां भारत अपने इस आयात की कीमत रुई और चावल देकर अदा करता है। यदि भारत ने कपड़े का आयात बंद कर दिया तो विदेशी मुल्क भारतीय रुई को लिवरपुल नहीं मॅगाएगे, चावल न खरीद सकेगे। दूसरे शब्दों मे चूकि भारत को लंकाशायर के कपड़े की आवश्यकता नहीं, इसलिए इगलैंड भारत का चावल नहीं पा सकता। भारतीय चावल भारतीय खपत के लिये ही काफी नही है। अग्रेज अधिकारियों के कथनानुसार भी सात करोड़ भारतीयों को आधा पेट भोजन भी नहीं मिलता।

इसलिए यदि भारतीय चावल का विलायत में निर्यात होता है तो उसका कारण यह नही कि भारत मे चावल अत्यधिक है जैसा कि लदन मे बैठे हुए भारत के हाई कमिश्नर विज्ञापित करते हैं, बल्कि इस कारण होता है कि भारतीय कारीगर, कातने वाले, जुलाहे, कपास ओटने वाले, छीपी, रगरेज, बढई, मोची, कुम्हार, जहाज़ बनाने वाले, तथा मछली के व्यवसायी—आदि इस युग मे अपने शिल्प से रोज़ी कमा सकने से वञ्चित कर दिए गए हैं, इसलिए जब स्वराज्य भारत के प्रत्येक निवासी को भोजन और वस्त्र प्राप्त कराता है तो भारतीय कारीगर पुनर्जीवित हो उठेंगे, और उन्हे भारतीय चावल की आवश्यकता होगी, और उसे खरीद सकने मे समर्थ होंगे। तब भारतीय चावल विदेशों मे निर्यात होने के लिए नहीं बच रहेगा, और पश्चिम को अपना चावल स्वय पैदा करना पड़ेगा। लखनऊ प्रति मास ७०००० अडे विलायत रवाना कर सकने मे समर्थ न होगा जैसा कि वह आज कर रहा है। इसी तरह चाय, कहवा, तेल के बीज भी निर्यात के लिए न बचेंगे, और न पश्चिमी देश इसके लिए समर्थ होंगे कि वे अपना तैयार माल निर्यात कर पूर्व के आयात के माल की कीमत चुकता कर सकें।

इसी तरह पश्चिम को अपने कारखानों का माल अपने देश में खपत करने भर को ही तैयार करने के लिए विवश होना पड़ेगा। तथा साथ ही अपने लिए खाद्य सामग्री भी स्वयं पैदा करने में समर्थ होने के लिए प्रयत्न करना पड़ेगा। एक शब्द में पाश्चात्य देशों को उसी तरह आत्मनिर्भर होने के लिए विवश होना पड़ेगा जिस तरह भारतवर्ष सदा (ब्रिटिश काल छोड़ कर) आत्मनिर्भर रहा है।

अभी कुछ दिन हुए लंकाशायर मिल संघ के मंत्री ने लोगों को समझाना प्रारम्भ किया था कि लंकाशायर को केवल दूसरे धंधों में पड़ने का ही प्रयत्न नही करना चाहिए बल्कि इंगलैड को अपनी खाद्य सामग्री अधिक से अधिक पैदा करनी चाहिए। जब इंगलैंड इस प्रकार स्वावलम्बी राष्ट्र बन जायगा तो वह अपने जंगलों और वाटिकाओं को काट और उजाड़ चुका रहेगा जैसा कि उसने पिछले महायुद्ध के समय किया था और उसे भारत से आयात के स्थान पर अनाज स्वयं ही पैदा करना होगा। दूध तथा दूध से तैयार अन्य चीजें दूसरे देशो से मँगाने की अपेक्षा अपने देश मे ही उत्पन्न करना होगा। अन्य पाश्चात्य देशो की भी ऐसी ही अवस्था होगी। ऐसी स्थिति हो जाने पर कलो की उतावली गति से चलाने की आवश्यकता तो रह ही नही जायगी, किन्तु कलात्मक उद्योग धन्धो के क्षेत्र मे कदाचित कलो की बिल्कुल ही आवश्यकता नहीं रह जायगी। चरखा और करघा इंगलैंड मे भी उसी प्रकार घर कर लेंगे जैसा नार्वे मे उनका प्रचलन हो रहा है। और जहा शेफील्ड मे चाकू कैंची, स्विटजलैंड में घड़िया, बेलजियम में निब, और फ्रास मे गोटे के व्यवसाय केन्द्री भूत होकर एक-देशिक-व्यवसाय हो गए हैं वहां उनके स्थान पर पाश्चात्य देशों में ग्राम धंधों को अपना क्षेत्र विस्तृत करना पड़ सकता है। इस प्रकार के भीषण परिवर्तन का मतलब वास्तव में उन्नसवीं सदी की औद्योगिक क्रान्ति

के विरुद्ध दूसरी क्रान्ति करना होगा और तब हम पाश्चात्य देशों में आज की अवकाश की भावना और समय के विपक्ष उन्मत्त दौड़ को समाप्त देखेंगे।

ठीक आदर्श

इस तरह हम पश्चिम मे एक ऐसे युग के आगमन की आशा कर सकते हैं जब एक बार फिर राष्ट्रीय जीवन पर से बुद्धि का प्रभुत्व हट जायगा और उसकी जगह मनोभाव उचित स्थान ग्रहण करेगा, जब कलों का अत्याचार दबा गया दिया रहेगा और शिल्पी का कौशल पुनर्जीवित किया जा चुका रहेगा, जब उत्पादन केवल अपने देश में खपत के लिए होगा, पर-जीवी साम्राज्यवाद का स्थान स्वावलबी, आत्म-निर्भर राष्ट्रीयता ले चुकी रहेगी, जब प्रतिद्वन्दिता की भद्दी भावना मिट गई रहेगी और सहयोग की सुन्दर भावना के लिए स्थान बना चुकी रहेगी, जब बाजार की नकली तड़कीली भडकीली चीज़ों की चाह की जगह टिकाऊ वस्तुओं का प्रेम आ चुका रहेगा जब सभ्यता एक बार फिर टुकड़ो के स्थान पर 'पूर्ण' वस्तुओं पर आधारित होगी, जब राष्ट्र के मेधावी रचनात्मक कार्यों मे योग देने का प्रयत्न करते रहेंगे और सहारक साधनों की खोज मे नहीं लगे रहेगे, जब विचार और जीवन आंगिक न रह कर सर्वांगीण हो गए रहेंगे, जब धर्म दिखावट न रह गया रहेगा बल्कि जीवन की स्थायी प्रेरणा बन गया रहेगा और अततः जब राष्ट्र विश्व-विजय के आकाक्षी न रह कर परमार्थनिष्ठ आत्मा बन गए रहेंगे।

गॉव राष्ट्रीयता की स्वावलंबी, आत्मनिर्भर इकाई हैं।

यह सब कुछ अच्छा है और ठीक है। योरप को एक दिन अपना आदर्श बदलना पड़ेगा। डेढ सौ वर्षों की औद्योगिक क्रान्ति को

कदाचित अपने ही मार्ग पर पीछे लौटना होगा। हम को यह भी मानना पड़ेगा कि जर्मनी के युद्ध की तैयारी का कारण उसके पास विदेशों मे बिक्री के लिये मंडी का न रह जाना है। और कोई भी औद्योगिक देश उपनिवेश के बिना हाथ पैर रहित लुंज आदमी की तरह है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या कभी भारत इस रूप में रहा है कि वह स्वावलंबी और आत्म निर्भर रहा हो। हिन्दू समाज की रचना का आधार क्या है? इसी उत्तर पर उस योजना का ठीक होना निर्भर है जिसे कांग्रेस ने ग्राम्य उद्योगो के पुनरुद्धार के लिए तैयार किया है।

हिन्दू समाज

यह प्रायः कहा जाता है कि हिन्दुओ में धार्मिक और सामाजिक रीतिया और संस्थाएं एक दूसरे मे मिली होती हैं। यह बात ठीक है पश्चिमी सभ्यता के रग मे रगे होने के कारण हम लोग व्यवस्थाओं और संस्थाओं के ऐसे बेमेल संयोग का विरोध करते हैं। किन्तु जब हम पश्चिमी पर्दा हटा दे और अपनी प्राचीन संस्कृति का अध्ययन करे तो हमें इसके अंतर्गत विचार-शीलता समझने मे कोई कठिनाई नहीं हो सकती। यथार्थ बात यह है कि जिसे हिन्दू धर्म कहा जाता है वह मतों और सिद्धान्तों की उसी प्रकार एक गठरी नही है जिस प्रकार हिन्दू समाज रीतियों और सूत्रो की ढेरी नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत धर्म और समाज भारतीय जीवन के जाल के ताने बाने की रचना करते हैं और वे स्थूल रूप से हिन्दू सस्कृति द्वारा प्रकट किए जा सकते हैं। यह सस्कृति ही हिन्दू सभ्यता की यथार्थ अनुक्रमणिका है। यह हिन्दू प्रतिभा का विकसित रूप है। यह निस्सदेह उस उच्च स्फुरण से रक्षित होता है जो धर्म द्वारा सदा प्राप्त होता है। यह हिन्दू समाज का मूल आधार है जिसने ऊपरी तौर से देखने

स्थान पर युद्ध के भौतिक सिद्धान्तों को ही प्रथम स्थान देगा, और लखनऊ के अधिवेशन मे (अप्रैल १९३६) समाज और गान्धीवाद के संघर्ष ने उग्र रूप धारण किया किन्तु साल भर के अन्दर ही फैजपुर (दिसम्बर १९३६ में) लोगों ने अनुभव किया कि समाजवाद को भी भारतीय-करण की आवश्यकता है, और इससे कांग्रेस के अधिक उग्र भाग तथा युवक दल के मस्तिष्क मे भी उतार की गति में परिवर्तन हुआ। फिर भी हम यह नही कह सकते कि अब भी उन्होंने उन तीन बातों का अनुभव करना प्रारम्भ किया है, जो समाज का पोषण करती है, अर्थात कानून, लोकमत और व्यक्तिगत चेतना वा अन्तःकरण। इनमें अन्तिम सबसे प्रबल अमोघ और सबसे अधिक अचूक है, यह अवश्य कहा जायगा कि समाजवाद एक जीवन-यापन के साधन की अपेक्षा गौरव-त्याग रूप मे ही अधिक प्रचारित किया जा रहा है। और एक जीवन का सिद्धान्त जो वास्तव मे गान्धीवाद है, इस बात को ऐसा अंगीकार करता है, अहिंसा की शक्ति स्वीकार कर लेने पर हमारे सामने शक्ति वा एक नया और अनन्त स्रोत प्रकट हो जाता है, और इस सिद्धान्त को मान कर इसके आधार पर बना हुआ समाज एक ऐसा बिजली-घर होगा जहा पर संचालक गान्धी अपने सत्य और अहिंसा के डायनमों द्वारा अनन्त विद्युत् शक्ति उत्पन्न करेगा जो पहाड़ों को उखाड़ फेंकेगी और साम्राज्यों को निर्मूल कर देगी, रचनात्मक कार्य-क्षेत्र में यह मोटर से चलने वाले ट्रैक्टरों की भाति भूचाल-पीड़ित राष्ट्र के कूडा कबाड़ को खोद डालेगा, और उद्धार के महान कार्य को इस प्रकार पूरा करेगा जिस से एक प्राचीन सभ्यता के लुप्त होते हुए लक्षणों में शक्ति और जीवन का सचार हो सके। गांधी जी का समाजवाद केवल एक भौतिक शक्ति नहीं है बल्कि नैतिक शक्ति है, जो राष्ट्रीय संस्कृति को पुनः उर्वर करती है जो उपेक्षा के कारण ऊसर बन गई है, तथा अन्दर से सूख कर निर्जीव हो गई है और बाहर की ओर फालतू हरियाली के भर जाने के

पर हिन्दू शब्द से बोध होने वाली अनेक जातियों का प्रभेद कर दिया है किन्तु इसी ने जीवन के बहुसंख्यक विरोधों के मध्य एक यथार्थ समन्वय भी विकसित किया है। ये विरोध केवल वर्तमान समय की द्रुतगामी कल्पनाएं नहीं हैं, और न वे ठोस विवाद हैं जो जीवन मे समय समय पर उत्पन्न होते हैं, वल्कि हम यदि कह सके तो वे उन चिरस्थायी भिन्नताओं मे से कुछ हैं जो स्मृतिकारों, दार्शनिकों और महात्माओ को कठिन समस्या मे डाल देती रही हैं। धन का विद्या से क्या सवंध है, मनुष्य की आध्यात्मिक प्यास का भौतिक लालसा से किस प्रकार सामजस्य करना चाहिए ? विश्वामित्र, बाल्मीकि और बशिष्ठ मे कौन सब से वड़ा है ? ये इन समस्याओं में से कुछ हैं जिनका उत्तर प्राचीन हिन्दू समाज के संस्थापको और प्राचीन हिन्दू सस्कृति के पूर्व पुरुषों ने दिया था।

वर्णाश्रम धर्म

वर्णाश्रम धर्म हिन्दू समाज का मुख्य लक्षण है। भारत के चार वर्णों का सगठन उनमे होड़ की भावना मिटाने के लिए हुआ है, क्योंकि प्रत्येक वर्ण को अपने ऊपर अभिमान करने का उपदेश दिया गया है और वह अपने मे ही पूर्ण प्रजातन्त्र रूप है। ऐसा कोई नहीं कहता कि मनुष्य के चार आश्रमो मे कभी विवाद खड़ा होता हो। वे धर्म के पालन के उसी प्रकार साधन होते हैं जिस प्रकार वर्ण। यह है कि चारों आश्रमो को एक व्यक्ति एक ही जीवन में पार कर लेता है किन्तु वर्ण को एक ही जीवन मे क्रमानुगत अवस्थाओ मे पार नहीं करना पड़ता बल्कि जीवन के एक चक्र मे क्रमानुगत जन्मो मे पार करना होता है। वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था मे प्रत्येक वर्ण और आश्रम के कर्तव्य और कार्य बिल्कुल अलग अलग बटे हैं, अर्थात् उनका पृथक पृथक अपना धर्म है।

समय बदला

अब हमें यह देखना है कि आधुनिक काल में इनकी किस प्रकार अधोगति हुई है, और हम उनकी स्थापना नए सिर से कर सकते हैं वा नहीं, और यदि कर सकते हों तो जीवन की वर्तमान अवस्थाओं का समाज के पुराने संगठन के साथ किस प्रकार सामंजस्य किया जाय। हमने यह देख लिया है कि ब्राह्मण निर्धनता और ज्ञान के प्रतीक रहे हैं और धन कभी भी ज्ञान का सहगामी वा पुरस्कार नहीं माना जाता था। संस्कृति की निस्संदेह मान और प्रतिष्ठा भी होती रही है किन्तु यह सेवा के आदर्श की अनुवर्तिनी बना दी गई रही है और संस्कृति के पुजारियो को राज्य और समाज से आश्रय मिलता था। राजा उन्हें दान देकर निर्वाह कराता था और जनता वृत्ति देती थी। ब्राह्मण राज्य और समाज दोनों की समान रूप से सेवा करता था और एक रूप से जीविका का अधिकारी था।

सम्पत्ति दूसरे वर्णों को दी गई थी, जायदाद और शारीरिक बल दूसरे ही वर्ण को और प्रत्येक को अपना कर्तव्य धर्म मानने, उसी के लिए जीवित रहने, और उसी के लिए मरने का उपदेश दिया गया था। किन्तु समय बदल गया। राजा रानी का संरक्षण नही रह गया। हिन्दू संस्कृति का समाज पर प्रभाव नही रह गया और विदेशी शासकों ने एक ऐसे दल से, जिसके लोग विद्वान और ग़रीब थे, अपना मतलब साधने की आवश्यकता अनुभव की। इन लोगो द्वारा अपने कानूनो को जनता के सामने रखने और जनता की आकाक्षाएं स्वयं समझ सकने के लिए इनसे दुभाषिए का काम लिया। ब्राह्मणों ने बड़ी उत्कठा से अग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर इस रूप मे विदेशी शासको के द्वारा एक बार विशेष प्रतिष्ठा और धन प्राप्त किया किन्तु थोड़े ही समय मे उन्हें मालूम पड़ा कि वे मॅझदार मे छोड़ दिए गए हैं जहा वे एक तैरते डडे के ऊपर पड़े से मालूम पड़े जहा न तो उसके पास डाड़ था, न

पतवार, न पाल। शासकों को दूसरी जातियों और वर्णों को आसमान पर चढ़ाने मे सुभीता मालूम पड़ा। वे नई शिक्षा के कारण शक्ति, मान, मर्यादा, और धन की खोज मे अपना पुश्तैनी धधा छोड़ बैठीं और कुछ समय के लिए धन-सम्पन्न हुईं। इस प्रकार गाव कस्बों की ओर बढ़े; धंधों का नाश हुआ, लोगो मे विदेशी शिक्षा, विदेशी उपाधियो, विदेशी नौकरियो, विदेशी प्रशसाओ, और पदवियों का नशा फैला जब तक कि प्रत्येक जाति और वर्ण ने अपने प्राचीन देश और सस्कृति को बेच डालना उचित न समझा।

छोटा लोक

हम एक क्षण के लिए गावो मे चले और समाज मे प्रचलित इस नई बिगाड़ के कारण उत्पन्न की वर्तमान और भूत अवस्था पर विचार करे। कुछ समय पहले तक गाव एक संघबद्ध इकाई था, और एक तरह से वह अब भी ऐसा ही है। जिस तरह एक शताब्दी पहले था, उतना अब सामान्य उत्पादन और स्वार्थों के सम अधिकार चाहे न हों, किन्तु गाव अब भी राष्ट्रीयता की स्वावलबी और आत्म-निर्भर इकाई बने हैं और यदि भारतीय राष्ट्र को अपना व्यक्तित्त्व और अखडनीयता रखनी है तो उनको सुरक्षित और स्थिर रखना चाहिए। हम भारतीय गाव को एक छोटा लोक कह सकते हैं जो प्रायः अपनी आवश्यकता की सभी चीजे अपने अदर ही पा जाता है।

गाव मे सब पेशे के आदमी रहते थे। इसलिए जीवन की अत्यधिक आवश्यकता की सब चीजे वहा मिल जाती थी। दूसरे गावों के साथ केवल सामाजिक आनन्द के लिए ही सम्पर्क होता था, किन्तु कस्बो के सम्पर्क से गाव का पैसा वकील, डाक्टर, और आढतिए द्वारा खिंच आता है और वहा से शहर, शहर से समुद्र पार चला जाता है। प्राचीन समय मे हम लोग ससार को अपनी सर्वोत्तम उपज देते थे, और

अपने भोजन तथा वस्त्र के लिए कभी बाहरी दुनियां पर निर्भर नहीं रहते थे, किन्तु अफसोस, सब चीजों का क्रम ही पलट गया हम भिख-मंगे घसकट्टे ही रह गए हैं, भारतवर्ष जहा एक सब से प्राचीन सभ्य देश था, जहा देश भर मे दूध दही की नदी बहती थी वहा यह विदेश की सराय हो गया है।

भारत की भारी जन-संख्या का बल

क्या अब हम अपने समाज का काया-पलट कर सकते हैं? इसमें बहुत सी कठिनाइया हैं, उनमे से सब से मुख्य देश के लोगों में उत्पन्न असहाय अनुभव करने की भावना है। किन्तु इतना ही नहीं, लोग यही नहीं अनुभव करते कि सब शक्ति हमारे हाथ से निकल गई है। बल्कि उन्होंने अपने मे दासता और हीनता के गुण ग्रहण कर लिए हैं।

हिन्दू समाज का अपने सुधार की ओर ध्यान देना उचित ही है। ब्राह्मण निराशा पूर्वक पूछता है कि सरकारी नौकरियो से वचित रहने पर उसके भविष्य की क्या दशा होगी, मानो सदा विदेशी शासकों की अराष्ट्रीय सेवा करते हो उसकी जिन्दगी बीतती आई है। हरिजन सोचता है कि अब तक सवर्ण हिन्दू एक सदी से उससे आगे बढ़े रहे हैं। उनको वह किस प्रकार पीछे कर सकता है। हमारा यह कहना है कि पुराने समय के हरिजन और ब्राह्मण, जो इस समय का हरिजन बन गया है, दोनो को और बीच की अन्य सभी जातियो उपजातियो को एक बार फिर उस अवनति की ओर ध्यान देना चाहिए जिसमे वे सब पिछली सदी मे गिर गए हैं, उन्हें सोचना चाहिए कि वे, जिस हद तक मुमकिन हो, हिन्दू समाज की सामाजिक आर्थिक रचना का पुनरुद्धार कर सकते हैं वा नहीं।

आज की वर्ण-व्यवस्था प्राचीन व्यवस्था का बिगड़ा रूप है। यह कोई नहीं चाहता कि विकृत व्यवस्था, जाली सिक्के का ही प्रचलन किया

जाय। बल्कि इस व्यवस्था की आत्मा जाग्रत करना चाहिए। ब्राह्मण, जिसका अभिप्राय आधुनिक समय के सभी विद्वानों से है, अपने बधुओं का नेतृत्व करे, सम्पति को विद्या से पृथक कर दिया जाय, शिल्प जीवन का पुनरुद्धार किया जाय, गाव राष्ट्रीयता की स्वावलम्बी, आत्म-निर्भर इकाई बन जायँ। इतना कर चुकने पर हम भारत का पुनरुद्धार कर चुके रहेंगे।

लोग यह पूछेंगे कि बैलगाड़ी मोटर गाड़ी की दौड़ मे कैसे ठहरेगी। यह ठीक है। इस तुलना का मतलब यह है कि मामूली ग्राम-उद्योगो की ओर लौट चलना और ससार मे गावो की वहार देख सकना भारत के लिए सम्भव नही है जहा पश्चिम-देशों मे औद्योगिक-वाद की बाढ़ इतने विकराल रूप में फैल चुकी है। इस बात को मान लीजिए। किन्तु क्या हम एक सीधा प्रश्न अपने सामने रख सकते हैं कि जिस देश को आज से कल-कारखानों का जीवन प्रारम्भ करना हो वह विलायती कलों का मुकाबला किस प्रकार कर सकता है। लंकाशायर के कारखानों की कलों का गुप्त भेद बहुत कम लोगों को मालूम है जो प्रायः प्रतिदिन परिवर्तित होती रहती हैं, जिनमे नित्य सुधार होते रहते हैं जो उसके खास व्यवसायी को ही मालूम होते हैं।

जब हम कोई कल खरीदना चाहें और कलों को बनाने वाला हमें बिलकुल नए ढग की कले ही दे, तब भी उन कलो के तैयार होकर यहा खड़े किए जाने और चालू होने तक मे छः से दस बरस तक लग ही जायँगे। इतना समय, कल तैयार करने वाले देशो मे नित्य के आविष्कारों मे अनवरत होड़ के कारण, उन कलों को पुरानी अप्रचलित सिद्ध कर देने के लिए पर्याप्त है। जो कले इगलैंड से भारत में आकर खड़ी होगी, और जो खुद इंगलैंड मे ही चल रही होंगी उनके मध्य कितनी अधिक प्रतिद्वन्दिता होगी। उदाहरणार्थ एक मामूली कागज की मिल को लिया जा सकता है जो किसी जगह

भारत में खड़ी की जा रही हो वह स्कैंडिनेविया की कागज़ की नई से नई भारी मिलो का क्या मुकाबला कर सकती है ! इस तरह खड़ी की गई हुई असंतोषजनक कर्मचारियो और अपर्याप्त पूंजी से चालू की हुई, कुछ ही पुरानी बन गई आज की कलों को विलायत की नित्य सुधार और आविष्कार से उन्नत की जाती हुई कलों के मुकाबले हम बैलगाड़ी ही कह सकते हैं।

भारत की प्रबल शक्ति

यथार्थ बात यह है कि चीन को छोड़कर भारत की भाति ससार मे कोई ऐसा देश नही है जिसकी जन संख्या उस देश को असीम प्रबल शक्ति-सम्पन्न बनाती है। चीन और भारत ही ऐसे देश हैं जिनमे संसार पर शासन करने की यथार्थ शक्ति है, किन्तु उनमे इस तरह की हीन महत्त्वाकाक्षा नही है, वे अपना ही शासन कर सकने मे संतुष्ट रहेगे। भारत की जन-संख्या के बल द्वारा ही ग्राम-उद्योगो का पोषण होता है और वे कलो द्वारा तैयार चीज़ो के मुकाबले भी ठहर सके हैं। इस बात को दुनिया कबूल करती है कि हमारे देश का जुलाहा मिल मालिकों के मुकाबले अब भी ठहरा हुआ है। असल मे उसके लिए जो बात सहायक है वह है मुफ्त की मिहनत। कारीगरो को जब कोई काम नही रहता, उस समय वह अपने स्त्री बच्चो के साथ मिल कर अपनी कारीगरी मे लगे रहते हैं, इससे चीज सस्ती बनती है, कारीगरो को एक नई चीज़ तैयार करने की खुशी होती है। वह उस कारीगरी को अपनी कह सकने का गौरव अनुभव करता है। सारा परिवार एक ही जगह रहता है, उनके प्रेम और आचार भंग नहीं होने पाते। चीजो की तैयारी मे जो थोड़ा अतिरिक्त व्यय बैठता है, वह एक सहायतार्थ धन के रूप मे होता है जिसे देश-भक्त ग्राहक एक लोप होते हुए शिल्प के पुनर्जीवन के लिए अपनी खुशी से देता है।

इस तरह अल्प-संख्यक धनिक उद्योगपतियों के हाथ मे जाकर एक जगह संचय होने के स्थान पर धन और मजदूरी का बराबर रूप से बटवारे का निश्चय हो जाता है। ऐसे ही धन के एकत्र सचय होने के कारण पाश्चात्य देशो मे एक ओर गगन-चुम्बी भवनो और दूसरी ओर श्रमिको की गदी झोपड़ियो का जन्म हुआ है।

नए समन्वय की आवश्यकता

हमें यह नही समझाना चाहिए कि हिन्दू संस्कृति और ग्रामों के पुनरुद्धार का समर्थन करते हुए—वा अधिक प्रचलित शब्दों मे भारत मे पुनरुत्थान करने के लिए उद्योग करते हुए—हम सस्कृति, अर्थ-शास्त्र और राजनीति की खिचड़ी पका रहे हैं। हा, यह बात जरूर है कि प्राचीन समय मे इस तरह का सविभाजन ज्ञात नही था। जीवन एक और अविभाज्य है। लोगो के आर्थिक सगठन की रक्षा सामाजिक लोक-मत और एक उन्नत चेतना के अनशासन के प्रयोग द्वारा होता था। इन दोनो को जीवन के रग रग मे परिव्याप्त एक धार्मिक आदर्शवाद की कुछ भक्ति से सहायता मिलती थी।

इस प्रकार समाज की रक्षा केवल कानून के कड़े अंकुश से नहीं होती थी, बल्कि एक अत्यधिक उन्नत और सतत प्रभावशील लोक-मत द्वारा और इस के ऊपर एक तीव्र सवेदनशील चेतना द्वारा होती थी। इस प्रकार जीवन के कार्य भौतिक, बौद्धिक, और नैतिक थे, इन मे नैतिक का सब से ऊचा स्थान था किन्तु समय की गति ने विपरीत क्रम से एक दूसरे के ऊपर के प्रभाव को मिटा डाला है। समाज की रचना एक समय इस महत् सिद्धान्त पर हुई थी कि धन जो राष्ट्र को केवल धनी ही नही बल्कि शक्तिशाली बनाता है, उद्योग धधो, बुद्धि, और श्रम-जीवियो के कल्याण के लिए अवसर होता है। यह बात विशेष कर उस देश मे अवश्य होनी चाहिए जो ग़रीबो का वास्तविक देश है।

किन्तु, लोवेल के कथनानुसार, सभी मतों, रायो, और राजनीतिक सिद्धान्तो की प्रवृत्ति होती है कि वे जहा एक बार सस्थाओं के रूप मे व्यक्त हुए होते हैं, अव्यवहृत हो जाते हैं, क्योंकि जो मुख्य और रचनाकारी सिद्धान्त विचार-धाराओ वा शासन-व्यवस्था के भेद प्रभेद रूप में विश्लेषित होने के समय क्रियाशील रहता है, अपनी क्रियाशीलता मिटा देता है, और जो एक समय चिरंतन चित्त का सजीव निस्सरण था, और इतिहास में सुव्यवस्थित रूप मे व्यवहृत था; केवल बातचीत में आने वाला व्यर्थ सूत्र और इतिहासज्ञो के लिए नीरस विषय रह जाता है। इस लेखक द्वारा बताई अवस्था हिन्दू सस्कृति की आ पहुंची है। यह एक व्यर्थ सूत्र और नीरस विषय रह गई है। इसके पूर्व गौरव की स्मृति केवल कुछ आस्थाओं, प्रथाओं और रीतिया मे रह गई है। अतएव हमे इसके सस्थापकों के मूल उद्देश्यों और लक्ष्यो को जानने के लिए पिछली बातों पर विचार करना चाहिए और आज की ठोस बातो और लक्षणो को छोड़ कर उन आदर्शों के वातावरण मे पहुँचना चाहिए जिसमे इसके अनेक लक्षणो की उत्पत्ति हुई थी।

ऐसा करने पर हमें तुरन्त यह अनुभव होगा कि किसी राष्ट्र की संस्कृति उसके धार्मिक अभ्युदय की वाह्य अभिव्यक्ति होती है। यदि धर्म प्रेरक शक्ति है तो संस्कृति उसका प्रत्युत्तर है। और जब धार्मिक स्फुरण दुर्बल हो जाता है तो लोगो पर से सस्कृति का प्रभाव भी मिट जाता है। हिन्दू संस्कृति केवल एक बौद्धिक सूक्ष्मदर्शिता नही है बल्कि जीवन की सर्वांगीण व्यवस्था का प्रतिरूप है जिसके अंदर सामाजिक नियम और नागरिक सस्थाओ का समावेश है जो युगों के प्रहार का सामना करती चली आई हैं।

हम लोगो ने देख लिया है कि किस प्रकार समाज की नीव ही इस का मुख्य विषय रही है और सम्पत्ति तथा विद्या, भौतिक तथा आध्यात्मिक के मध्य बड़ी सावधानी से संतुलन स्थापित किया गया

था, किस प्रकार आनुक्रमिक सदियो और आनुक्रमिक आक्रमणो के प्रहारों ने उनका कुछ भी नही बिगाड़ा है, और किस प्रकार अबोधगम्य रूप से, पिछली डेढ़ शताब्दी के पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क द्वारा सचारित विश्वासघाती प्रभाव समाज की रग रग मे व्याप्त हो गए हैं और उसकी नीव तक को हिला दिया है। जीवन की बिल्कुल व्यवस्था ही पलट गई है और "उपयुक्त लक्षणों के साथ आदर्शों की नई व्यवस्था" आ उपस्थित हुई है। सस्कृति और विवेक का स्थान धन और शक्ति ने ले लिया है तथा उन्हे बिल्कुल उखाड़ फेका है। सामाजिक मर्यादा का स्थान ठेकों ने ले लिया है, और प्रजातन्त्रात्मक कही जाने वाली प्रवृत्तियो ने केवल भेद उत्पन्न करने वाली शक्तिया ही खुली छोड़ी हैं।

अब एक बार फिर हिन्दू समाज को अपनी प्राचीन सस्कृति को ऊचे आसन पर बैठाने और उसे अधकार और निराशा के गड्ढे मे गिरते हुए लाखो करोड़ो व्यक्तियों के लिए प्रकाशस्तभ रूप बनाने की आवश्यकता है। एक नए समन्वय की आवश्यकता है जो जीवन के प्राचीन आदर्शों के साथ समाज की वर्तमान अवस्थाओ के सयोग को प्रकट करे और इसके लिए एक सस्था बनाने की आवश्यकता है जिसका मुख्य लक्ष्य और अध्ययन का विषय भारत की तीव्र गति से विलुप्त होती हुई संस्कृति को पुनर्जीवी करना और उसे भारतीय राष्ट्रीयता की वास्तविक कुजी बनाना हो।

निष्कर्ष

हम सब बातो का साराश लिखेगे। भारत का एक प्राचीन संगठन था, जिसमे देश का सब भाग, सभी गाव स्वतः पूर्ण थे। ऐसे सगठन का पाश्चात्य औद्योगिकवाद के प्रहार के कारण लोप हो गया। पाश्चात्य औद्योगिकवाद का आधार बड़े पैमाने पर उत्पादन और प्रतिस्प-

र्थात्मक मूल्य हैं। इस उद्देश्य के लिए प्रतिस्पर्द्धी औद्योगिक राष्ट्रो के मध्य संसार की मंडिया विवाद की जड़ हैं। पिछले महायुद्ध के कारणों में से एक कारण यही था, दूसरे महायुद्ध का भी यही है। पाश्चात्य औद्योगिक राष्ट्रो द्वारा आकाक्षित विक्रय-क्षेत्र पूर्व के देश हैं। पूर्व में आत्म-चेतना उत्पन्न हो गई है और वह उस दासता का अनुभव करने लगा है जिसमे वह बँधा है। जापान से मिस्र तक—पूर्वी राष्ट्रो ने अपनी मंडियो पर विदेशी चीजो के आक्रमण के विरुद्ध विद्रोह प्रारम्भ कर दिया है। इसलिए दो बाते निश्चित रूप से होगी। पूर्वी राष्ट्र अपना उत्पादन बढाएगे और ज़रूरते कम करेगे। पश्चिमी अपना उत्पादन कम करेगे और खाद्य सामग्री तथा कच्चे माल को स्वयं उत्पन्न करने का प्रयत्न करेगे। इस तरह पूर्वी और पश्चिमी दोनों रेलगाड़ियां एक दूसरे के निकट आ रही हैं—इस समय वे क्षणिक रूप से पृथक दिशाओं में जा रही हैं।

इसके लिए पूर्व को पश्चिम के सम्मुख आदर्श रखना चाहिये। पश्चिम अपने कड़ुवे अनुभव के बिना नही सीखेगा। पश्चिम कड़ुवा अनुभव कर चुका है और सीखना प्रारम्भ कर दिया है। एक बार मुख्य बात समझ में आ जाने पर, व्योरे की बाते पूरी करने में समय न लगेगा।

भारत मे इस काम को हाथ मे लेने वाला बड़ा राष्ट्रीय संगठन काग्रेस है। काग्रेस कभी उग्र रूप का आक्रामक कार्य-क्रम रखती है और कभी रचना तथा पुनर्रचना का कार्य-क्रम रखती है। सन् १९२२ में काग्रेस को १२ अप्रैल, १९३० तक विश्राम का अवसर मिला। उसे फिर २० मई, १९३४ से शान्त रहने का अवसर मिला है। इन शान्ति के समयो में धारा-सभाओं में जाकर कुछ लोग आदोलन जारी रखते हैं। इनमे न पड़ने वाले लोग रचनात्मक कार्य मे लगे रहते हैं। ऐसे ही रचनात्मक कार्यों मे पहला काम खद्दर का था। पहले लोगो

कारण दिखाई भी नहीं पड़ती।

जब इस देशी रूप में इस समस्या पर विचार किया जायगा तो इस बात का तुरन्त अनुभव होगा कि श्रम और मजदूरी भारत में विचारों के एक विचित्र मिश्रण के रूप में हैं, यद्यपि पाश्चात्य देशों में वे मजदूरी के अभिभाज्य आनुषंगिक अंग हैं। अक्सर यह आलोचना की जाती है कि जब हम इस देश के शिल्प-जीवन की प्रशंसा का बखान करते हैं और इसने देश के लोगों को काम देने की जो निश्चित व्यवस्था की थी बात करते हैं तो हम केवल श्रम, अधिक श्रम, उससे भी अधिक श्रम से ही संतुष्ट हो जाते हैं। और हम श्रमिकों के लिए अवकाश की बात ही नहीं सोचते, हमारा दावा है कि हमारी सामाजिक व्यवस्था की मूल भावना ही भारतीय शिल्प-जीवन में ताने और बाने की बात मानव उद्योगों में श्रम और अवकाश की बुनावट की तरह है। भारत में केवल श्रम और केवल अवकाश नहीं है। श्रम अवकाश है और अवकाश श्रम है, श्रम कला है, श्रम आनन्द और मनोविनोद है, श्रम कलाकार की आत्मानुभूति और उसकी आत्मा की शान्ति है। श्रम और अवकाश भारतीय शिल्पकार के लिए उसी प्रकार विभाज्य नहीं हैं जिस प्रकार उसका शरीर और आत्मा। इस विषय के पहलू का अधिक विवरण आठवें अध्याय 'यंत्रों के दुष्परिणाम' में दिया गया है।

भारतीय समाज के इस सजीव दृष्टिकोण को ग्रहण करने के स्थान पर हमें पश्चिम की क्रांतियों के उसके अनेक परिवर्तित रूपों में निर्जीव अनुकरण करने मे समय नष्ट करने के लिए आग्रह किया जाता है। यह अनुभव नहीं किया जाता कि पाश्चात्य देशों में भी एक क्रान्ति को पूर्ण होने में पर्याप्त समय लगता है, और उसके आगे बढ़ने व पीछे हटने की प्रत्येक अवस्था का अनुकरण नहीं किया जा सकता। क्या हमें यह कहने की आवश्यकता है कि एक क्रान्ति की विभिन्न स्थितियों और रूपों का अनुकरण करना एक पूर्ण सवाक चित्रपट के लाखों चित्रों

को यह विश्वास नही था कि खद्दर विदेशी कपड़े को भगा सकने में समर्थ होगा । किन्तु खद्दर ने यह लगभग कर दिखाया है। जाग्रत राष्ट्र की चेतनता होती है और वह सभी राजनीतिक तथा आर्थिक कानूनों तथा प्रतिबधो से अधिक प्रबल होती है।

खद्दर ग्राम-उद्योगो का राजा है। इसने अपना काम कर लिया है, किन्तु एक पुनरुत्थान का अग्रदूत होने के कारण इसे अन्य ग्राम-उद्योगो के पुनर्जीवन का भी प्रयत्न करना चाहिये। इसी काम को गाधी जी काग्रेस के आदेश से 'अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग संघ' स्थापित कर कर रहे हैं। हम यहा पर काग्रेस और सघ के उद्देश्य के प्रस्ताव की प्रतिलिपि देते हैं जो बम्बई मे डा० राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व मे ४८ वे अधिवेशन मे स्वीकृत हुआ था :—

कांग्रेस का प्रस्ताव

चू कि काग्रेस-वादियों के सहयोग से और सहयोग के बिना भी स्वदेशी की उन्नति करने का उद्देश्य बताने वाली सस्थाए देश भर में खुली हैं और चू कि स्वदेशी के सच्चे रूप के सबध मे लोगों मे बहुत भ्रम फैल गया है, और चू कि काग्रेस का उद्देश्य इसके जन्म के प्रारम्भ से ही उन्नति करते हुए रूप मे जनता मे मिले रहना रहा है और चू कि ग्राम का पुनसंगठन और पुनर्रचना काग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम का एक विषय रहा है और चू कि ऐसी पुनर्रचना का स्वाभाविक मतलब हाथ की कताई के मुख्य उद्योग के अतिरिक्त लुप्त वा लुप्त होते जाते हुए अन्य ग्राम-उद्योगों को प्रोत्साहन देना है, और चू कि हाथ की कताई के पुनर्संगठन की तरह एक काम केवल केन्द्रित और विशेष उद्योग द्वारा ही सभव है जो काग्रेस के राजनीतिक कार्यों से अप्रभावित और स्वतत्र रहे, इस लिए श्री० जे० सी० कुमारप्पा को गाधी जी के आदेश और नियत्रण मे, काँग्रेस के कार्यों

के एक भाग रूप में 'अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग सघ' नाम की समिति स्थापित करने का अधिकार दिया जाता है। उपर्युक्त समिति उपर्युक्त उद्योगो के पुनरुत्था न और प्रोत्साहन और गावो की नैतिक तथा भौतिक उन्नति के लिये कार्य करेगी, और उसे अपनी नियमावली बनाने, चंदा एकत्रित करने तथा ऐसे कार्य करने का अधिकार होगा जो उसके उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक हो।

उद्देश्य

इस सघ का उद्देश्य ग्राम पुनर्संगठन, पुनर्रचना, जिसमें ग्राम उद्योगो का पुनरुत्थान, प्रोत्साहन और उन्नति भी सम्मिलित है, तथा भारत के ग्रामों की नैतिक और भौतिक उन्नति करना होगा।

मिल का कपड़ा बनाम खादी

बहुत से लोग पूछते हैं कि खद्दर और स्वदेशी प्रदर्शिनियों से मिल के कपड़े को क्यों बाहर कर दिया जाता है और मिल का कपड़ा जो स्वदेशी है काग्रेस कार्य-कर्ताओं मे पदाधिकारियो को पहनने का क्यो अधिकार नही दिया जाता। एक बात यह है कि मिल के कपड़े को, जिस को भारी पूंजी का आश्रय रहता है, उसके विज्ञापन के लिये कठिनाई से चलने वाली प्रदर्शिनियो की सहायता की आवश्यकता नही होती। काग्रेस संगठन मे किसी भी निर्वाचित समिति में स्थान के लिए चुनाव मे खड़े होने के लिए खद्दर पहनना आवश्यक शर्त है।

बहुत से लोग मिल के कपड़े में निहित आर्थिक और नैतिक अभिप्राय को नही समझते। मिल का कपड़ा स्वदेशी है, किन्तु सभी स्वदेशी चीजे गरीबो की सहायता नही करती। भारतीय शासन-व्यवस्था में केवल इसी बात को नही देखना है कि देश की ब्रिटिश साम्राज्य-

वाद से रक्षा की जाय, बल्कि भारतीय पूजीपतियों के पजे से भी रक्षा करनी है।

मिलो का सचालन भारी पूंजीपतियों द्वारा होता है जो गाव से कस्बे मे मजदूरों को खीच लाते हैं। और जब हम मजदूरो के जीवन की अवस्था को देखे और उसकी अवस्था से तुलना करे जिन मे वे गावों मे रहते थे और जहा का वास छोडकर वे कस्बे मे पहुंचे हैं तो यह तुलना हमको इतना स्तब्ध कर देगी कि इस पर बड़ी गभीरता से विचार करने की जरूरत मालूम पडेगी।

मिल के मज़दूरों का कोई ऊचे दर्जे का काम नही होता। उनकी रचनात्मक भावना लुप्त हो गई रहती है। वे कोई भी चीज शुरू से आखीर तक नही बनाते। वे कल मे कुछ लगाते रहते हैं या तागा खीचते रहते हैं, या पुलिन्दो की सख्या गिनते रहते हैं या किसी पुर्जे पर पानी गिराते रहते हैं; या किसी पुर्जे मे तेल लगाते हैं, उसे घुमाते या मरोड़ते रहते हैं और इतने मे ही उनका दिन भर का काम खतम हो जाता है। शाम को उन्हे सिर्फ मजदूरी भर की फिक्र रहती है, उस काम की तरफ ध्यान नही रहता जो उन्होने किया होता है। वे उस जड पदार्थ को जिसका कच्चा पदार्थ बना होता है, एक सजीव रूप देकर उसे प्राणयुक्त पूरी तैयार चीज नही बनाए होते।

इसकी तुलना एक शिल्पकार से कीजिए जो पत्थर के भद्दे टुकड़े को ले लेता है और उसे गढकर एक सुन्दर आकार प्रदान किए होता है। अथवा जुलाहे की बात लीजिए जो दिन भर मे एक कपड़े का टुकड़ा बुने होता है। वह उसका मालिक होता है उसे बेच सकता है, कही गिरो रख सकता है, अपने पुत्र की शादी के लिये उठा कर रख सकता है। किन्तु मिल का मजदूर दिन भर मिहनत करता है और अप्राकृतिक अवस्था तथा सास भी न ले सकने योग्य परिस्थिति मे किए काम की थकान मिटाने के लिए अपनी मजदूरी

का तीन चौथाई नही तो आधा हिस्सा जरूर ही शराब पीने मे खर्च कर देता है। मानव शक्ति को जीवन प्रदान करने वाली वस्तु मजदूरी की रकम नही है, बल्कि काम का आनंद है। मिल के मजदूर के हिस्से काम का आनंद नही पड़ता।

नैतिक पहलू पर विचार करने पर हम देखते हैं कि किस प्रकार पुरुष अपने ही परिवार की स्त्रियों से भी पृथक कर दिए जाते हैं और वे दूसरे परिवार की स्त्रियो के सम्पर्क में आते हैं। मिल मे काम करता हुआ परिवार एक इकाई, ठोस इकाई नहीं होता जो एक उत्पादक कला के सम्पन्न करने मे लगा हो, बल्कि खंडित रहता है। बच्चे तक माताओ की गोद से पृथक होते हैं। मिलों में फौजी संगठन होता है, किन्तु ग्राम-उद्योगो में गृहस्थी की मर्यादा अखंडित रहती है और उत्पादित वस्तु का स्वामित्व भी बना रहता है।

लोग मिल के कपड़ों की सस्ती की बात करते हैं किन्तु यह नहीं देखते कि जिन चीजों की सस्ती को वे खोजते हैं, वही उनके ग़रीब पड़ोसियो की बर्बादी का कारण है। एक मिल जो प्रति दिन ५०० पौंड कपड़ा, लगभग १५००० गज लम्बा बुनती है। १००० जुलाहों को बेकार करती है। कृषि के बाद बुनाई ही सबसे सामान्य धंधा है। क्योंकि भोजन के बाद जीवन की सबसे आवश्यक वस्तु वस्त्र ही है। इसलिए जब हम भोजन और वस्त्र दोनो विदेश से मंगवाने लगे तो देश के दोनो मुख्य धंधो को हम बर्बाद कर दिए रहेगे। इसी कारण हम आग्रह करते हैं कि देशी चीजे ही खाई जायँ और खद्दर ही पहना जाय। खद्दर केवल जुलाहे का ही पोषण नही करता, बल्कि गाव की विधवाओं, असहाय अबलाओ, पुत्रहीन माताओ और निराश्रय वृद्धाओ का भी सहारा होता है।

छोटी बातो का बड़ा परिणाम निकलता है। इसे हम इस तरह देख सकते हैं। यदि किसी गाव मे ३०० चरखे चल रहे हैं तो दो आना

प्रति दिन के हिसाब से कताई करने वाली औरतों की मजदूरी ४०) प्रति दिन और २५ दिन मे १०००) हुई। बारह महीने मे इन औरतों की कमाई सिर्फ चरखे द्वारा १२०००) हो जायगी। और ऐसे भी गाव हैं जो कताई की पुरानी दर ―) प्रति दिन के हिसाब से पिछले १६ वर्षों मे एक लाख रुपया कमा चुके है। अब कताई की मज़दूरी दो आना प्रति दिन कर दी गई है। इसलिए उनकी आय दुगुनी हो जायगी। क्या गाव की आय मे यह छोटी रक़म है? क्या यह उसके लिए भारी बचत नही है? लोग इस बात का अनुभव क्यों नहीं करते?

जब मैंने एक जमीदार से यह किस्सा सुनाया कि एक जमीदारी के गावो को कताई से कितना लाभ हुआ है तो वह उछल पड़ा और उसने अपनी जमीदारी के गावों मे चरखा चलवाने की व्यवस्था करवाई। बात यह है कि कताई से कमाए हुए धन के चौथाई हिस्से से ही किसान देन और जमीदार की लगान चुकता कर सकने मे समर्थ हो जाते हैं, इसलिए वे अपनी गाढी कमाई की पैदावार को रोके रहते हैं और बाजार चढ़ने पर उपज को बेचते हें जिससे उनको काफी दाम मिल जाता है।

हमने कहा है कि प्रत्येक मिल १००० मजदूरों की रोज़ी मारती है। प्रत्येक धान कूटने की मिल प्रति दिन १५०० परिवारो की रोजी अर्थात् ६००० पेटो का खाना छीन लेती है। कपास ओटने का हर एक कारखाना प्रति दिन ९६ आदमियो की रोजी मारता है। इस तरह लोगों के बेकार हो जाने का लेखा लगाया जा सकता है जो कलो के उद्योग-धन्धो की भारी उत्पादक शक्ति के कारण बेकारी मे पड़ते जाते हैं।

यह सब मुनाफा कहा जाता है? कुछ तो धनी मिल-मालिकों की जेब मे जाता है और कुछ विदेशी व्यापारियो के हाथ मे जाता है जो

कलें बनाते हैं, उसमें जलाने की चीजे, तेल आदि, पुर्जों में लगाने वाले चिकनाई के तेल, तथा कलो के पुर्जे आदि देते हैं और उससे भारी मुनाफा उठाते हैं। इस तरह मिलें धनी को अधिक धनी और ग़रीब को अधिक ग़रीब बनाती हैं। मिल का कपड़ा न प्रयोग करने के लिए यही विचार हैं। जो कोई जुलाहा भारतीय मिलो का सूत लेकर कपड़ा बुनता है, वह भी भारत मे लगी हुई विदेशी पूजी की ही वृद्धि करता है। इस तरह मिलों का कपड़ा इस्तेमाल करने से ही भारतीय पूंजीपतियो को ही मोटा नही बनाया जाता बल्कि विदेशी पूंजीपति मोटे होते हैं और मुनाफा विलायत जाता है।

जो लोग खद्दर खरीद सकते हो उन्हे कभी भी, किसी भी दृष्टि से मिल का कपड़ा नही पहनना चाहिए और जो लोग न खरीद सकते हों, उन्हे भी खद्दर का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से पड़ोसी की रोज़ी चलाने में मदद हो जाती है। मिल का कपड़ा सस्ता मालूम पड़ सकता है किन्तु खद्दर से आधा भी टिकाऊ नही होता। इस तरह दामो की कमी-बेशी पूरी पड़ जाती है। एक दूसरा उपाय भी है। जो लोग खद्दर पहने वे कुछ छोटा कपड़ा और कम सख्या में पहन सकते हैं। इस तरह खद्दर के कुछ ज्यादा दाम का पड़ता पड़ सकता है। किसी भी प्रकार हम खद्दर के लिए जो अधिक पैसा देते हैं वह स्वदेश के एक ग़रीब कारीगर और लुप्त होते हुए शिल्प के लिए सहायतार्थ दान रूप मे होता है, इस तरह इस अधिक खर्च की यह शिकायत करने का मोका नही है।

भविष्य का शत्रु विदेशी कपड़ा नहीं है, क्योंकि लंकाशायर के कपड़े की मौत हो गई है, वह लुप्त हो गया है, वह फ़िर कभी लौट नही सकता। लंकाशायर के मिल-मालिक भारतीय व्यापारिक प्रतिनिधि-मंडल के सामने घुटने टेक कर प्रार्थना कर रहे

थे कि भारत लकाशायर से १७ करोड़ रुपए का कपड़ा खरीदे, किन्तु व्यापारिक प्रतिनिधि-मडल ने, जिस मे नर्म दल और मिल मालिक थे, इस माग को बिल्कुल नामंजूर कर दिया था और कहते थे कि ३½ करोड़ से अधिक का कपड़ा लकाशायर से नही लिया जा सकता। ऐसी हालत मे अब हम लोगों को गरीबों के दूसरे दुश्मन भारत के धनी मिल मालिकों से लड़ना है।

——::——

अध्याय ८

यंत्रों के दुष्परिणाम

१—यांत्रिक बल के उद्योग-धंधों से युद्ध छिड़ता है।

अठारहवीं सदी के अंत में भाप के इंजिन के आविष्कार के बाद मानव सभ्यता का एक नया युग प्रारम्भ हुआ जिसमे उस समय तक हाथ से चलाए जाने वाले औज़ारों को यान्त्रिक बल से चला कर बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाने लगा। जो चीजे पहले हाथ द्वारा बनती थी उनकी अपेक्षा बड़े पैमाने पर कलों द्वारा बनी वस्तुएं सस्ती होने लगीं। उनकी बिक्री के लिए बड़ी मडियों की आवश्यकता होने लगी। मंडियो की खोज से देशो के विजय के उद्योग होने लगे जिससे विजित देशों पर राजनीतिक और अनीतिक प्रभाव रक्खा जा सके। विजित देशों मे हाथ से बनी चीजो के स्थान पर कल की बनी चीजे बेची जाने लगीं जो ज्यादा सस्ती और अच्छी थी। नए पैमाने के भारी औद्योगिकवाद के लिए फौजो को रखने की जरूरत पड़ी जिससे कच्चे माल उत्पन्न करने के क्षेत्र पर एकाधिकार रक्खा जा सके जिससे कलें चल सकें, और मडियो पर एकाधिकार रक्खा जा सके जहा उन कलों का तैयार माल बेचा जा सके। इसके अतिरिक्त विजित जातियों को विजेताओ की भाषा और रहन-सहन, फैशन और पहनावे, ग्रहण करने के लिये वाध्य किया जाता जिससे उनको पहले तो औद्योगिक देशो की कलो द्वारा तैयार चीजों को बलात ग्रहण कराया जाय, फिर वे चीजे उनमें स्वयं लोक-प्रिय हो जायं।

यह योजना पहले काम कर गई, कुछ दशकों तक चलती रही। उन्नीसवी शताब्दी भर इगलैड और जर्मनी सरीखे राष्ट्र खूब सम्पन्न दिखाई पड़े और एशिया तथा अफ्रिका मे साम्राज्य स्थापित करते रहे, तथा इन दोनो महाद्वीपों के धन पर मोटे होते रहे। किन्तु शीघ्र ही वह समय आया जब उत्पादन इतनी अधिक मात्रा मे बढ़ने लगा कि पश्चिम की इन दो प्रबल शक्तियों मे ही प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न हो गई। फ्रास जितना औद्योगिक था, उतना ही कृषि-जीवी, इटली कृषि-जीवी ही अधिक था, रूस उन्नीसवीं सदी के अधिकाश भाग तक इतना कृषि-जीवी था, कि एशिया और अफ्रीका की तरह वह भी इगलैड और जर्मनी की तैयार चीजों की मडी था, और अपने देश मे बड़े पैमाने पर पैदा होने वाले गेहू से कल द्वारा तैयार चीजों की अदला-बदली करता था। औद्योगिकवाद की तेजी और परेशानी पिछले महायुद्ध के रूप मे फूट पडी। जिसके छिड़ने का मूल कारण तत्कालीन राजनीतिक घटनाए नही थीं, वल्कि औद्योगिक प्रतिस्पर्द्धा थी।

२—युद्ध और उसके दुष्परिणाम

यह सबको ज्ञात है कि योरप का पिछला महाभारत कलों और उद्योग-धन्धो की पूजा के कारण उत्पन्न हुआ था। उस महायुद्ध की ध्वसलीलाए, उसके भीषण आर्थिक परिणाम, और बिल्कुल निर्दोष दिखाई पड़ने वाले भाप के इजिन अन्य यात्रिक वल (गैस, इजिन, तैल इजिन, तथा पेट्रोल इजिन और बिजली का डायनमो और मोटर भी) के भंयकर परिणामो का यहा पर कुछ विस्तार से अध्ययन करना चाहिए जिससे सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र की भीषण परिस्थिति का कुछ अनुमान हो सके।

महायुद्ध की भौतिक हानि पर हम पहले विचार करेंगे। प्रो० एल०

वोगर्ट के अनुमानुसार महायुद्ध की प्रत्यक्ष हानि १८६,००,००,००,०००, एक खरब, छियासी अरब और अप्रत्यक्ष हानि १५१,००,००,००,०००, एक खरब इक्यावन अरब डालर अर्थात् दोनो के योग कुल ३, ३७, ००,००,००,००० तीन खरब सैतींस अरब अर्थात् एक लाख करोड़ (दस खरब) रुपए की हानि हुई। यह ध्यान मे रखने की बात है कि जीवन, मनुष्य की जीवन शक्ति, कुशलता, नीति, आचार और मानव संबंध के अन्य रूपों पर जो प्रभाव पड़ा उसकी गिनती इस हानि मे नही की गई है। युद्ध काल के पाच वर्ष में हुई हानि का यथार्थ लेखा रुपयों मे बता सकना असंभव है।

धन की इतनी हानि तो हुई है किन्तु जन की जितनी हानि हुई वह अधिक भयानक है। संसार के इतिहास में कभी इतने अधिक मनुष्य एक दूसरे द्वारा बध होने के लिए एकत्र नही हुए। युद्ध काल मे कुल ६ करोड़ सैनिक युद्ध के लिए तैयार किए गए थे और लड़ाई में भाग लेने वालो मे अस्सी लाख सैनिक मारे गए वा बीमारी से मरे, एक करोड़ ९० लाख घायल हुए ७० लाख बंदी किए गए। ब्रिटिश साम्राज्य के मरो और घायलो की संख्या ३० लाख थी।

उपर्युक्त संख्या केवल लड़ने वाले सैनिकों की है। साधारण नागरिकों की मृत्यु संख्या भी भयानक है। पूर्वी योरप और तुर्की साम्राज्य मे नागरिको की मृत्यु संख्या बहुत थी। अनुमान किया गया है कि प्रत्येक मृत सैनिक पीछे ५ नागरिक भूख प्यास, मैदान में रहने, बीमारी, कत्ले आम, वा बच्चो की मृत्यु संख्या बढ़ने से मरे। साधारण मौत के अलावे ४० लाख आदमी युद्ध के कारण उत्पन्न बीमारिया— युद्ध ज्वर, (इन्फ्लुएंजा) और न्युमोनिया से मरे। प्रत्यक्ष रूप से युद्ध के कारण मरो की संख्या ४ करोड़ बताई जाती है। और यदि संतान-उत्पत्ति मे कमी को भी जोड़ा जाय तो यह संख्या ५ करोड़ होगी।

में से प्रत्येक चित्र को लेना है, रूसी राज्य क्रान्ति भी अपने विकासके पिछले दो दशकों में अनेक परिवर्तनों से होकर गुजरी है और यह हम लोगों के नवयुवक सुधारकों के लिए उचित मालूम पडता है कि वे एक नए आन्दोलन को पूर्ण के स्थान पर अश अंश रूप कार्यान्वित करने के लिए हाथ मे लेने के पहले उसके भाग्य परिवर्तनों की जांच करे और विचार करें। क्या हम कह सक्ते है कि तब हम लोगों के समाजवाद का अच्छा फल निकलेगा ? जब एक बार हम लोगों की राष्ट्रीय सस्कृति के मुख्य अंगों को ग्रहण कर लिया जाता है तो वह मानव चक्षुओं के सम्मुख स्पष्ट हो जायगी। जो राष्ट्र अपने पडोसी पर अधिकार करने की नीति नहीं रखता उसके नागरिक भी स्वाभाविक रूप से ऐसे होंगे जो एक दूसरे पर अधिकार न रखना चाहते हों। प्रेम और सेवा इसकी उन्नति के संकेत वाक्य होंगे और सम्पूर्ण राष्ट्र के सामूहिक कल्याण के लिए उसके प्रत्येक व्यक्तियों द्वारा की हुई प्रार्थना का परिणाम व्यक्तियों के पूर्ण विकास रूप में होगा जिससे प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण मनुष्य के रूप में विकसित होगा और अपने को अखिल मानव संघ के एक अवयव रूप में बना लेगा जो, सुसंस्कृत प्रवीण, आचार मे उन्नत और जीवन मे पूर्ण होगा तथा राष्ट्र के यन्त्र में स्वचालित कल और उसके भिन्न २ पुर्जों के रूप में न होगा। इनमें पहला गाधीवाद है और बाद वाला समाजवाद।

मछलीपटम, मद्रास } डा० बी० पट्टाभि सीतारामैया

जन-सख्या के ह्रास का एक नमूना फ्रास का उदाहरण लेकर देखा जा सकता है। १९१४ ई० मे फ्रास की आबादी ३,९७,००,००० तीन करोड़ सत्तानवे लाख थी। इस मामूली जन-सख्या मे से लगभग ८० लाख युद्ध के समय फौज मे बुलाए गए, उनमे से १४ लाख मारे गए, ३० लाख घायल हुए, और ४ लाख से अधिक कैद हुए। घायलो मे से ८ और ९ लाख के बीच स्थायी रूप से शारीरिक रूप से लुज हो गए थे। इस तरह पूरे २० लाख मनुष्य जिनमे से अधिकाश देश के चढती जवानी वाले पुरुष थे—मर गए वा लुज होकर असहाय हो गए।

इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि युद्ध मे सब से वीर और साहसी व्यक्तियो की ही मृत्यु हुई। मोर्चे पर सामने आक्रमणकारी वा रक्षक सेना मे सब से साहसी सैनिक रक्खे जाते हैं। वे ही भयकर युद्धो मे भाग लेते हैं, इस लिए मरो और घायलो मे उन्हीं की सख्या अधिक होती है, इसलिए युद्ध के बाद देश मे शौर्य-हीन जनता ही रह जाती है।

युद्ध का एक दूसरा भयकर परिणाम युद्ध की समाप्ति पर बेकारी की वृद्धि है। बेकारो का लेखा देखने पर पता चल सकता है कि युद्ध के बाद योरप मे एक करोड ५० लाख परिवारो को बेकार-वृत्ति देकर उनके भोजन का प्रबध किया जाता था।

३—युद्ध के दुष्परिणाम का प्रतिकार

नार्मन ऐंजेल ने इस शताब्दी के प्रारम्भ मे भविष्य-वाणी की थी और साबित किया था कि युद्ध के परिणाम विजित की अपेक्षा विजेता के लिए ही अधिक हानिकर होते हैं। उन्होने अपने सिद्धान्त की पुष्टि बुअर युद्ध मे की। वे अपने सिद्धान्त को दुबारा सच साबित देखने के लिये पिछले महायुद्ध के समय भी जीवित थे। हमने पहले दिखाया है कि किस प्रकार महायुद्ध के पश्चात फ्रास और इंगलैंड

बेकारी की समस्या से परेशान हो गए थे। सच बात यह है कि महा-युद्ध के प्रत्यक्ष और तात्कालिक ही नही, बल्कि अप्रत्यक्ष और बिलम्ब मे होने वाला नतीजा यह हुआ था कि पूर्व के देशो ने पश्चिमी देशो, विशेष कर इगलैंड और जर्मनी के माल का बहिष्कार करना प्रारम्भ कर दिया था। लंकाशायर का कपड़े का व्यवसाय बहुत ही अधिक गिर गया था। १९३६—३७ मे ब्रिटेन से भारत में कपड़े की कुल आयात ३३ करोड़ ४ लाख गज कपड़ा था जब कि भारत की कुल खपत ५ अरब ७५ करोड़ गज थी अर्थात् आयात भारत की कुल खपत का ५·८ प्रतिशत था।

१८१३—१६ और १९३६—३७ ई० के बीच भारत में लंकाशायर के कपड़े को खपत ५८ प्रतिशत से घटकर ५·८ प्रतिशत रह गई तथा भारतीय मिलों के कपड़े की खपत २२ प्रतिशत से बढकर ६२·१ प्रतिशत हो गई, जब कि इस व्यवसाय मे जापान का भाग जहा पहले कुछ नही था, वहा ७·२ प्रतिशत हो गया। और साफ तौर से समझने के लिए यह जान लेना चाहिए कि १९१३ ई० मे ब्रिटेन से भारत मे आयात कपड़ा ५० करोड़ का था किन्तु १९३७ ई० में वह ७ करोड़ ही रह गया।

हिन्दुस्तानी-ब्रिटिश व्यापारिक समझौते की बैठकों में जिनमे भारत सरकार द्वारा नियुक्त भारतीय व्यापारिक प्रतिनिधि-मंडल में सर पुरु-षोत्तम दास ठाकुरदास, कस्तूरभाई लालभाई, लाला सीताराम, और घनश्यामदास बिड़ला सरीखे नरम दल के व्यक्ति और व्यापारी और मिल-मालिक थे, लंकाशायर इस बात की प्रार्थना करता रहा कि भारत ब्रिटेन से ९०० लाख गज कपड़ा खरीदे किन्तु ये प्रतिनिधि ६६६ लाख गज से अधिक लेने के लिये राजी नही हो रहे थे। ब्रिटेन भारत मे कपड़े की खपत के बदले इगलैंड मे भारतीय रुई की खपत यथाशक्ति बढ़ाने का जिम्मा लेने के लिये तैयार था किन्तु भारतीय

प्रतिनिधि अपनी ही शर्तों पर डटे रहे।

इस प्रकार यह दिखाई पड़ रहा है कि कलो के साम्राज्य का लोप हो रहा है। परिस्थितिया स्पष्ट रूप से इसके, लोप हो जाने की वात प्रकट कर रही हैं। किन्तु यह इस युग के आर्थिक और सामाजिक पहलू ही हैं, जो समय की गति के कारण फूट कर वाहर निकले दिखाई पड़ते हैं। इस चित्र का नैतिक पहलू कलों के लिये इस की अपेक्षा बहुत ही अधिक विनाशक है।

४—कलों की नैतिकता

जब हम कलों का विरोध करते हैं तो हम किसी अधविश्वास द्वारा प्रभावित नही रहते। हम जिस बात का विरोध करते हैं, वह है कलों के युग का अत्यधिक प्रभुत्व-स्थापन जीवन पर इसका बढ़ता हुआ प्रहार, गांव के ऊपर लादी हुई इसकी गुलामी की जजीर, मनुष्य के हुनर और व्यक्तित्व की बर्बादी, एक नए वैयक्तिकवाद की वृद्धि जो धनी और धनी तथा गरीब को और ग़रीब बनाता है, देश भर मे घरो और परिवारों मे अनैतिकता की वृद्धि, और अततः राष्ट्रों के बीच सतत युद्ध की वास्तविक स्थिति, जो आज के ससार मे राष्ट्रीय जीवन का स्थायी रूप हो गया है।

हम इन बातो का अध्ययन अधिक विस्तार से करेगे। कलो की तेज़ी के कारण समय और दूरी की वाधा कट गई है। शारीरिक श्रम कम हो गया है, मानव-यातना के ज़ोर की कमी हो गई है। और भौतिक युग की सस्कृति नगरो मे ही नही, बल्कि गावो के लोगों मे लोक-प्रिय हो गई है। अत्यधिक दूर की आवाज सुन ली जाती है, दूर के दृश्य पुनः प्रदर्शित किए जा सकते हैं। एक नई बाजीगरी और इन्द्रजाल जीवन मे परिव्याप्त हो गया है जिसका मानव मनोभावो तथा मानव धारणा शक्ति पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है, भारी उद्योगपतियो

का एक दिन मे ही जन्म हो गया है। और सम्पत्ति का भारी संचय हो गया है, बाहर से देखने पर व्यक्तियो ही नहीं बल्कि जन-समूहो और राष्ट्रो के मध्य एक बंधुत्व भावना जाग्रति मालूम पड़ती है। किन्तु एक नए शैतान, स्वार्थपरता के शैतान का भी जन्म हो गया है जिसके साथ एक दूसरे अवतार, प्रतिस्पर्द्धा के शैतान का भी जन्म हो गया है ।

इन के कारण बेरोक व्यापार के सिद्धान्त का जन्म दिया गया और इसी की लहर उदार दल के नाम के साथ बह चली। किन्तु स्वार्थ-परता के सिद्धान्त पर कतिपय कुलीन वर्ग के व्यक्तियों वा कतिपय मध्य श्रेणी के प्रमुख व्यक्तियो का एकाधिकार नहीं रह सकता । कुलीन वर्ग ने पूंजी लगाई और माल तैयार किया, मध्य श्रेणी वालो ने उन मालो का वितरण किया, और धनी हो गए। इस तरह समाज मे संघर्ष उत्पन्न हुआ जिसमे समाज के प्रत्येक दर्जे के आदमी अपने दर्जे से ऊपर उठने के लिए उद्योग करने लगे । किन्तु उच्च और मध्य वर्ग, अनुदार और उदार दल, पूंजीपति और खुदरा व्यापारी—सब ने निम्न वर्ग, श्रमिकों को अकेला ही छोड़ दिया । अतएव एक नए आन्दोलन का जन्म हुआ—एक मज़दूर आन्दोलन, एक क्षीण समाजवादी आन्दोलन, एक तीव्र उदार आन्दोलन उत्पन्न हुआ जिसके कारण राजनीतिक क्षेत्र में मताधिकार देकर और आर्थिक क्षेत्र में मज़दूरी की वृद्धि तथा पुरस्कार देकर तथा सामाजिक क्षेत्र मे अनेक बीमो, विशेष सुविधाओ और बेकार बृत्तियो को देकर अवस्था में विशेष सुधार किया गया। किन्तु इन उपायो मे कोई भी सम्पत्ति के यथार्थ उत्पादको को अचेतन करने में समर्थ नही हो सका है क्योकि खाने से और भूख बढ़ती है। मज़दूरो द्वारा हड़ताल और मालिक द्वारा मज़दूरो के बहिष्कार, मज़दूरो द्वारा कारखाने के विध्वंस करने के प्रयत्न और मालिको द्वारा मज़दूरों पर गोलियो की बौछार ने दोनो को एक दूसरे के प्रति भयभीत रहने की चिरस्थायी स्थिति में डाल दिया है ।

इधर मज़दूरो की आवश्यकता कम करते जाने वाली कलों की नित्य उन्नति की जा रही है। यदि कल की तदवीर से एक काम के करने मे सौ आदमियो की जगह दस आदमी की ही दरकार रह गई थी तो आज की तदवीर से वहा एक आदमी ही काम पूरा करने के लिए काफी है। नतीजा यह है कि आज के कुछ दिन पहले जहा सौ आदमियों को काम दिया जाता था, उसकी जगह एक ही आदमी की दरकार रह जाने से ९९ आदमी बेकार हो गए हैं। इस तरह आज के आविष्कार कल के आविष्कार के शत्रु हो रहे हैं और ये दोनों १०० आदमियों में से ९९ के शत्रु हो रहे हैं।

जहा यह भीतरी रोग-कीटाणु है जो उद्योग-धधों की जीवन-शक्ति को खा रहा है, वहा स्थूल रूप से यथार्थ बात यह रह जाती है कि नए नगर और कस्बे, जो नए उद्योग-धधो के प्रचलित होने से बसे हैं, केवल अस्वास्थ्यकर और घने ही नही हो गए हैं, बल्कि वे गावों और ग्राम-उद्योगों के शत्रु भी हो गए हैं। जमीन और उसकी अटूट सचित शक्ति का त्याग कर दिया गया है। गाव के कारीगरों के हुनर और कौशल को भुलाया जा रहा है, और उनका लोप हो रहा है। बेकारी सब ओर छाई हुई है और उदार सरकार देश की बर्बादी और लोगों के भूखों मरते जाने की समस्या पर आखे मूंदे ले रही है। शिल्प विज्ञान की जितनी ही वृद्धि हो रही है, लोग उतने ही अधिक पहले शारीरिक भूख से, बाद मे आत्मिक भूख से मर रहे हैं।

कलों का साम्राज्य बेहिसाब ऊँचाई और बोझ का हो गया है, इस कारण प्राचीन रोम साम्राज्य की तरह अपनी ही ऊँचाई और बोझ के कारण भरभरा कर गिर रहा है। यह अधिक दिनो तक नहीं रह सकता। प्रतिस्पर्द्धा जो समाज की जड़ मे घुस गया है, श्रमिक वर्ग मे आत्म-चेतना उत्पन्न होने से बिल्कुल स्वाभाविक रूप से स्वयं मिट जाने की ओर प्रवृत्त हो रहा है। इस तरह यह अनिवार्य

हो गया है कि एक राष्ट्र दूसरे पर अवलंबित नहीं रहे। यह नहीं हो सकता कि एक राष्ट्र तो नित्य धन बटोरता ही जाय और दूसरा उसका दास बनने में संतुष्ट रहे। अब वह दिन दूर नहीं है जब प्रत्येक राष्ट्र स्वावलंबी बन जायगा। यह आर्थिक और भौगोलिक दोनो आवश्यकता है। ऐसा आदर्श प्राप्त करने के लिए भारत बहुत उपयुक्त स्थिति में है। जब एक राष्ट्र स्वावलंबी हो तो वह अपने अन्दर दो श्रेणी, एक तो पूजीपति मालिक और दूसरी परिश्रम करता हुआ दास फिर से उत्पन्न नही होने दे सकता। यदि संभव होगा तो प्रत्येक प्रान्त स्वावलंबी होने का प्रयत्न करेगा, संभव होने पर प्रत्येक गाव स्वावलबी बनेगा। भारत मे यह बात पाच हज़ार वर्ष पहले हुई थी, और आज हम प्राचीन युग के समाजवाद की पुनः खोज कर रहे हैं।

भू-भागों के स्वावलंबी होने और ग्राम-उद्योगो के पुनर्जीवित करने का अर्थ यह नही है कि कलो का त्याग किया जाय। यदि ऐसा हो तो मोटरकार, रेलगाड़ी, तार, हम लोगो के चश्मे, कलमे, पेंसिले, दवाएं, और अन्य बहुत सी दैनिक व्यवहार की चीजे नही दिखाई पड़ेगी। कल को एकागिक रूप से धन बटोरने का साधन न रह जाना चाहिये। श्रम बचाने के यंत्र रूप मे इसका समाज में अपना एक स्थान और कार्य है किन्तु श्रम बचाने से एक ओर तो भूखो मरने की नौबत आती है और दूसरी ओर धन का अगाध भंडार जुटता है तो कल चाकर नही रह जाती, मालिक बन जाती है। कलों की इस कारण निन्दा करना कि इससे बड़े भयानक रूप की बुराई उत्पन्न हुई है, यह मतलब नही है कि प्रारम्भिक या मध्य युग को लौट चला जाय। यदि औद्योगिकवाद की पूजा, मुनाफो की चाह, और कीमते बढ़ाने के उग्र आवेग से यह नतीजा निकले कि लाखो सेर कहवा जला

डाला जाय,* हज़ारो एकड़ कपास की खेती जुतवा डाली जाय, मनों फल बर्बाद कर दिये जाय और हजारो गाये सुखा डाली जाय तो हम इस विध्वंस-लीला को देख हाथ उठाकर "कलो के युग से त्राहि त्राहि" कह उठेगे। आज हम उत्पादन की कम चिन्ता करते हैं, कीमतों की अधिक व्यापारिक मदी को हम श्राप देते हैं क्योंकि उससे गल्ला सस्ता हो जाता है। किसी दूसरे समय हम ऐसी सस्ती का स्वागत किए होते। किन्तु हम ऐसे युग मे रह रहे हैं जिसमें मानों हम लोगों की भूख पैसों की ही है, अन्न की नही।

एक अंग्रेजी मासिक पत्र सोशल आर्डर (९ जनवरी १९३८ ई०) मे एक लेख मे लिखा था :—

---

*जून १९३३ के दो साल पहले की अवधि में ब्राज़ील में १,८९, ५५,२४,००० एक अरब ८९ करोड़ पौड कहवा नष्ट करवा दिया गया, दुनिया की कुल आबादी १,८४,६९,००,००० एक अरब ८४ करोड़ होने पर प्रति व्यक्ति एक पौड पड़ा।

धन का अधिक चलन करने के स्थान पर-पूजी खाद्य पदार्थ को नष्ट करती है। १९३४ मे दाम चढाने के लिए दस लाख डब्बे गेहूं को बर्बाद करवा दिया गया, उसके साथ ही २६७००० बोरा कहवा, ५६० ००० बुशल चीनी और ५०००० किलोग्र चावल और इतना ही गोश्त बर्बाद किया गया।

ट्यूनिस में १३८०० एकड़ अंगूर का बागीचा उजाड दिया गया, और दूसरे ६९०० एकड़ बागीचों को उजाड़ देने के लिए कानून पास किया गया। इसके साथ ही न्यूयार्क की 'आंकड़ों की खोज करने वाली संस्था (ब्यूरो आफ स्टेटिस्टिकल रिसर्च) के आंकड़ों से पता चलता है कि १९३४ ई० मे २४,००,००० चौबीस लाख आदमी भूखों मर गए, तथा अपनी दुखी हालत के कारण १२००,००० आदमियों ने आत्मघात किया।

"हम लोगो द्वारा कलो का अथक विरोध होने पर भी कल अधिकाधिक काम करने की ही जिद करती है और हम लोगों का काम करने का घंटा कम करती जाती है, जिसका नतीजा यह होता है कि हम लोगों को विश्राम की आशा होती है किन्तु आजीवन कार्य के लिए इस दुनिया मे विश्राम हम लोगो के लिए एक रुचिकर वात नहीं मालूम पड़ती।

"इगलैंड मे हाल मे २०० से अधिक स्वयं, सेवक संगठनों के प्रतिनिधि-शिक्षा-सवंधी अधिकारी और व्यावसायिक धधों के व्यक्ति जुटे थे, और उन्होंने अवकाश के उपयोग की समस्या की राष्ट्रीय जाच करने के लिए एक समिति वनाई। इस समिति के सभापति सर विंडहम डीड्स ने वतलाया कि अवकाश "खाली" समय है जिसमे आदमी जो चाहे कर सके और औद्योगिक कीड़ा होने के स्थान पर आदमी वन सके। काम के घंटे कम थे, किन्तु लाखो ऐसे थे जिन के लिए अवकाश एक मखौल की वात थी। औद्योगिक मनोविज्ञान की राष्ट्रीय सस्था के श्री-कैप्टन व्लैक्स्ली ने कहा कि कुल आवादी के नव्वे प्रतिशत व्यक्ति अपनी मानसिक योग्यता से कम दर्जे के काम मे लगे हैं। एक दूसरे व्यक्ति ने कहा कि दस प्रति छोड़ कर सभी व्यक्ति अपनी मानसिक शक्ति के कम दर्जे के काम मे लगे हैं। सोचना चाहिये कि इसका क्या अर्थ हुआ। मानो एक छठी श्रेणी के लड़के को चौथे दर्जे मे वैठने के लिये वाध्य किया गया वा एक योग्य वैद्य को जीवन भर आयुर्वेद विद्यालय का एक मामूली छात्र रहना पड़ा।

"जो कोई भी व्यक्ति जीवित हो, उसे कुछ सीखना, उन्नति करना जारी रखना चाहिये। यदि वह किसी एक जगह ठमक जाता है, तो उसमे कुछ मुर्दा पड़ जाता है। "वड़े पैमाने पर उत्पादन की विधियों से कुछ समय के वाद किसी आदमी पर यही प्रभाव पड़ता है। वे उसे मुर्दा वना देती हैं, उसकी मानसिक योग्यता वैठा देती हैं।"

कलो के दुष्परिणाम-स्वरूप नैसर्गिक मानव मेधा जड़ हो जाती है, राष्ट्र के जीवन-रक्त का सचार रुक जाता है, शरीर मे व्याधि आ घेरती है, लोगो के हृदय को क्षति पहुँचती है, जिससे राष्ट्रीय नाड़ी केन्द्रीय आवेग के सुर मे स्पदित नही होती। इस तरह के असगठित राष्ट्र के व्याधिग्रस्त होते और मृत होते देर नही लगती। भारत इसी प्रकार की करुणाजनक मृत्यु के मार्ग पर है। यह सौभाग्य की बात है कि अतिम श्वास निकलने के पहले गाधी जी प्रायः अवतार रूप मे ही इस मृत्योन्मुख ससार मे अवतरित हो गए हैं, जिससे सपत्ति का पाप मिट कर सेवा का धर्म स्थापित हो, प्रतिस्पर्द्धा नष्ट होकर सहयोग भावना की स्थापना हो, घृणा का त्याग कर मानव हृदयो मे प्रेम का पुनः सचार हो।

———

अध्याय ६

नाटक का छठा अंक-समाजवाद

प्रत्येक युग को एक नया युग कहना एक आम बात हो गई है और इसमे सब से विचित्र बात यह है कि अनन्त काल के प्रवाह की प्रत्येक गति को ऐसे एक नए युग का प्रारम्भ बताने वाला कहा जाता है यह आशावाद की अतिशयोक्ति हो सकता है। फिर भी इस बात को मान लेने का कोई प्रतिवाद नही कर सकता कि काग्रेस के जीवन में ५० वर्ष की समाप्ति को एक नए युग का प्रारम्भ होना कहा जा सकता है। इस प्रगति के साथ-साथ विचारो की प्रगति भी होती रही है आज भारत ऐसे ही नए युग के प्रारम्भ काल में है। नए और पुराने विचारों के टक्कर और दोनो के अदर के आदर्शों के संघर्ष से निश्चय ही एक दिखावटी विश्रृंखला उत्पन्न होगी जिससे एक नए लोक की उत्पत्ति होनी है।

जो व्यक्ति एक परिवर्तन की छोटी बातो पर ध्यान रखता है उसे प्रत्येक वस्तु मे छः या सात बाते दिखाई पड़ती हैं। प्रश्न यह है कि भारतीय राष्ट्रीयता भी जिसका राष्ट्रीय काग्रेस की निहाई पर पुनर्निमाण हो रहा है, अपने विकाश की नई अवस्था से गुजर रही है या नहीं।

५० वर्ष पहिले हम लोग सोचते थे कि प्रत्येक व्यक्ति को अंग्रेजी पढ़ना चाहिए जिससे वह अपने मताधिकार का उपयोग कर सके अंग्रेजी का ज्ञान अंग्रेजी राज्य के अनिवार्य परिणाम के रूप मे समझा जाता था और अंग्रेजी राज्य अमिट और चिरस्थायी माना जाता था। आज हम

विषय-सूची

अपने राष्ट्र और अपनी भाषा की बात करते हैं। इस जाग्रत आत्म-चेतना के कारण हम अपने राजनीतिक भाग्य-निर्माण और राष्ट्रीय भाषा की पुनः परीक्षा मे ही नही लग गए हैं बल्कि अपनी सास्कृतिक अवस्था, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, अपने नागरिक नियम और नैतिक आदर्श की परीक्षा करने लग गए हैं। हम यह मानते हैं कि अपनी राष्ट्रीय परम्परा और प्रकृति की रक्षा करने के साथ ही साथ इन दोनो मे एक ऐसी प्रबल धारा प्रवाहित करनी है जो समाज का रूप परिवर्तित करने और एक नई सामाजिक व्यवस्था को विकसित करने से नहीं रुक सकती जो न पश्चिमी अवस्थाओ की नकल है और न पूर्वी अवस्थाओं को फिर से प्रस्तुत करने से बनी है। सामतशाही के पुराने आदर्शों को स्वतंत्रता और समानता की आधुनिक धाराओं की बाढ के आगे झुकना पड़ेगा। 'मर्यादा' की पुरानी भावनाओं को ठेके के नये नारो के लिए स्थान बनाना पड़ेगा जब पद-मर्यादा लुप्त होगी तो शून्य स्थल मे जीवन की समाजवादी व्यवस्था उमड़ पड़ेगी।

नाटक का छठा अंक

जब हम काग्रेस नाटक के विकास और कथा-वस्तु का अध्ययन करते हैं तो हमे योजना और उसकी पूर्ति मे एकता दिखाई पडती है। जो देश विदेशी आक्रमण के प्रहार के कारण बिल्कुल असगठित हो गया था और भौचक्का होकर खड़ा था उसमे जीवन का पुनर्सचार करना पड़ा और आत्म-चेतना की पहिली झलक मे उसे अपनी आख के सामने विदेशी शासक द्वारा उत्पन्न की हुई एक नई परिस्थिति ही दिखाई पड़ी।

शासन एक ठोस सत्य बन गया था और उस वक्त जो कुछ भी किया जा सकता था वह यही था कि इसके सुधार का प्रयत्न किया जाय शिकायतों की फिहरिस्त बनाई जाय और उसे दूर करने के उपाय

किए जायं। सामान्य अवस्था नही लाई सकती थी और रोगी को क्षणिक इलाज करने से ही सतुष्ट किया जा सकता था। वह नाटक का पहला अंक सुधारों का युग था।

पहिली जागृत का जोश ठडा होने पर और मस्तिष्क संतुलित होने पर लोगों ने यह अनुभव करना शुरू किया कि वे गलत रास्तों में भुलाए जा रहे हैं और उन्हें अपना विलुप्त राज्य देने के स्थान पर भरवेरिया और मालपुए दिये जा रहे हैं अतएव उन्होंने १९०६ ई० मे स्वशासन की माग पेश की जो नाटक का दूसरा अंक था किन्तु वे इसको स्वराज्य नाम से पुकारने से डरते थे, हाला कि उस साल के सभापति दादा भाई नौरोजी ने कलकत्ते काग्रेस मे इस शब्द का प्रयोग किया था, इस प्रकार नाटक का दूसरा अंक **स्वराज का युग** प्रारम्भ हुआ, जो अपने भाग्य-परिवर्तनों के साथ १९१७ ई० तक चलता रहा जब कि श्री मती एनीबीसेन्ट के आगमन से एक नया दृश्य उपस्थित हुआ। उन्होंने अपने आदर्श हो "होमरूल, (देशी शासन) नाम से पुकारा फिर भी यह आन्दोलन सरकार के साथ जोरों से संघर्ष कर सका। नाटक का यह तीसरा अंक १९२१ तक चला जब कि गाधी जी मंच पर आ उपस्थित हुए और उन्होंने चौथा युग स्वराज्य का प्रारम्भ किया किन्तु स्वराज्य शब्द की लोग तरह तरह से व्याख्या करते रहे इसलिए १९२९ मे इस बात की आवश्यकता हुई कि इसकी व्याख्या पूर्ण स्वतन्त्रता रूप मे की जाय, यह पाचवा अंक था। यह हम नहीं कह सकते कि विशेपण के कारण शब्द में कितनी उन्नित हुई।

लोक स्वभावतया ही पूछ सकते हैं कि अब छठा अंक क्या होगा यह नाटक का अन्तिम दृश्य होगा वा उसके पहिले का अंक। अब समय है कि राष्ट्र यह देखे कि स्वराज्य के अन्दर किस प्रकार के समाज

की रचना होगी जिसमे पूर्ण स्वतन्त्रता की रक्षा हो सके।

यह यथार्थ मे पूर्ण स्वराज्य होगा। उसके रूप और रक्षण क्या होंगे? वह प्रजातंत्र होगा वा धनिकों का राज्य होगा वा कुलीन वर्गों का शासन वा फैसिस्ट राज्य होगा वा समाजवादी संगठन? यदि अंतिम प्रकार का हुआ तो क्या यह आस्ट्रेलिया की तरह समाजवाद का अनुकरण होगा वा यह वस्तु-स्थिति को देखकर समाजवाद का प्रचलन कर उसके अंतिम रूप वोल्शेविकवाद का अनुसरण करेगा, यह स्वाभाविक प्रश्न हैं जो सामने आते हैं और इनका जवाब देना चाहिये।

बृद्धो की अपेक्षा नए लोग अधिक उत्सुक होते हैं। पुराने लोग अपनी कुछ सफलताओं से सन्तुष्ट हो जाते हैं और नये लोग आगे भी देखते हैं। आज के बृद्ध देशभक्त भी किसी समय युवक थे और जब उनके बुजुर्ग सुधारो की बात कर रहे थे तब वे स्वशासन का स्वप्न देख रहे थे। यह बात पीछे पड़ गई जिसने होमरूल का स्थान लिया अब उसके भी पुराने हो जाने से उसके स्थान को स्वराज्य ने ले लिया है। तथा अब स्वराज्य के अर्थ के विस्तार की भी आवश्यकता हो रही है इस तरह यदि आप कांग्रेस की तहो को उलटे-पलटे तो आप देखेंगे कि इसके ढाचे मे अनेक पर्त्त हैं और उनमे सतत विकास हुआ है। समाजवादियों की माग इस ढाचे की केवल सब से ऊपरी पर्त है।

किन्तु जब हम समाजवाद की बात करते हैं तो हमे केवल पश्चिम की शब्दावली से प्रभावित न रहना चाहिये। हम लोगो ने अत्यधिक रूपो में पश्चिम की बातों की नकल की है किसी भी रूप मे हम लोगों का समाजवाद वह भक्ति-प्रदर्शन नही होगा जो धन के अवगुण द्वारा निर्धनता के गुण को मिलता है। यह वह खूनी कीमत भी न होगी जो गरीबी अमीरी से वसूल करना चाहती है। समाजवाद को उतना

ही भारतीय होना चाहिये जितना स्वराज्य, खद्दर, राष्ट्रीय शिक्षा, धर्म की पूजा और दर्शन में विश्वास। भारतीय समाज की बनावट और उनके कार्यों की जाच पड़ताल और फिर से खोज की जानी चाहिए।

प्राचीनों ने सतयुग की बात कही है जब कि जायदाद और बुनियादी धन्धे जाति की समान रूप से सम्पत्ति थे और जहा लोग खरीदना बेचना, नफा व नुकसान, अमीरी व गरीबी, चीजों की भरमार व कमी जानते ही न थे। काल-चक्र ने ऐसे युग का अंत देखा और उसके बाद त्रेता तथा द्वापर आए तथा उनके बाद कलयुग का आगमन हुआ है जिसमे हम लोग पड़े हुए हैं कलयुग ने ही आज जीवन मे ऊंच और नीच का वर्तमान भेद उत्पन्न किया है और ऊचे महलों तथा टूटी झोपड़ियों का साथ साथ जन्म दिया है।समस्या यह है कि जीवन में स्त्री और पुरुषो की सुविधाओ मे किस प्रकार समानता लाई जाय और सब को भोजन और वस्त्र मिलने का निश्चय हो, हम अपने गावो और उनके धन्धों का पुनरुद्धार करे तथा उनकी बिक्री का जिम्मा ले वा हम अपने गावो को उजाड़ डाले और कस्बो की बस्तिया और घनी करे तथा बेकारी की वृद्धि करे तब मिलो को तोड़ने, जायदाद के फिर से उजाड़ने और सम्पत्ति के बटवाने की बात उठावे। हम देखते हैं कि बहुप्रशसित सोवियट भी व्यक्तिगत स्वामित्व को स्वीकार करने की ओर लौट रहा है जिसमे व्यक्तिगत कार्य करने की प्रवृत्ति जाग्रत हो सके। रूस मे लटकन केवल दूसरे किनारे की ओर झूल गया है और केवल शक्ति द्वारा ही वर्तमान लुढ़कती हुई अवस्था मे नही रक्खा जा सकता। इसलिए हमें प्रत्येक रूप से पूंजीवाद तथा उसकी स्वार्थपरता, औद्योगिकवाद और उसके भयानक परिणाम कल-कारखाने और उसके दुष्कर्म की निन्दा करनी चाहिए किन्तु हमे अपनी सभ्यता की मिट्टी भी उलटना चाहिए और उन्हीं परिवर्तनो को ग्रहण करना चाहिए जो उसी अवस्था और

परम्परा के अनुकूल पड़े। समाजवादियों को पहले ऐसे ही तिरस्कार का सामना करना पड़ा है जिस प्रकार असहयोगियों, होम रूल के अनुयायियों और स्वराजवादियो को सामना करना पड़ा। प्रत्येक नए सिद्धान्त को आरम्भ मे आलोचना का सामना करना पड़ता है किन्तु वह शीघ्र ही अपने निन्दको की निन्दा और बदनामी से पार हो जाता है और उसके सिद्धान्तो को सब लोगों को स्वीकार करना ही पड़ता है। यही समाजवाद की दशा होगी।

समाजवादियों ने यह बड़ी बुद्धिमानी की है कि देश में एक तीसरे दल को अपनी चालबाजी दिखाने मे शह नहीं दी है। हम लोगो के आपसी झगड़ो ने ही जो भूमि-गत, जातीय, वशीय वा साम्प्रदायिक होते आए हैं, विदेशियो को अपनी जड़ जमाने का अवसर दिया है और यह बड़ी अच्छी बात है कि शत्रुओ को अपने बीच मौजूद देखते हुए समाजवादी भारतीय सामाजिक दर्शन को झंझट मे नहीं डाल रहे है। विदेशियो से सुलझाव कर लेने के बाद हम लोगों को सुलझाव करने का अवसर मिलेगा। किन्तु इस मध्य काल मे हमे शिक्षा देते रहना चाहिये। यदि समाजवादी अहिंसा मे विश्वास रक्खें तो वे समाज को ऐसे रूप मे परिवर्तित कर सकेगे जो मन्द गति का किन्तु स्थायी होगा किन्तु वे यदि हिंसा मे विश्वास करेगे तो उनके परिवर्तन शीघ्र होंगे किन्तु वे बहुत अव्यवस्थित और क्षणिक होगे। इस बीच हम लोगो को साथ हो जाना चाहिए।

—:०:—

अध्याय १०

भारतीय समाजवाद की पुनः खोज

भारतीय सभ्यता की भाति भारतीय पुनरुत्थान को भी विशाल और बहुमुखी होना चाहिए। भारतीय सभ्यता संस्कृति की एक प्राचीन धारा है जिसने नागरिक नियमों और सामाजिक संगठनों की ऐसी व्यवस्था की है जो देखने मे ऐसे विचित्र रूप के हैं कि यद्यपि उनके मिलने के स्थान पर एक मुख्य एकता नही है किन्तु बहुत से लोग आख से दिखाई पड़ने वाली विचित्र भिन्नता को देख कर चकित रह जाते हैं और उनके मूल में व्याप्त सूक्ष्म साद्दश्य को नहीं देख पाते। समाजवाद के साथ ही साथ शादी के कानूनों और उत्तराधिकार की व्यवस्था की बात चीत करना आम बात हो गई है किन्तु भारतीय सभ्यता के पुनर्जन्म में समाज शास्त्र के विद्वानों और विद्यार्थियों के सामने युगो से प्रचलित और असीम शताब्दियों से मर्यादित ऐसी बाते आती हैं जिसे ऊपरी आलोचक देख ही नहीं पाता वा देख कर भी उसे पागलपन की बात कह कर टाल देता है।

श्रद्धेय डा० भगवानदास ने, जिन्होंने अपनी विस्तृत संस्कृति और साधुस्वभाव के कारण ख्याति प्राप्त की है, प्राचीन वैज्ञानिक समाजवाद की उसके आधुनिक प्रतिरूप से तुलना कर इस ओर लोगों का ध्यान आकर्षित कर एक महान कार्य किया है। उन्होंने अपने विद्वत्तापूर्ण निबन्ध मे इतिहास की भौतिक व्याख्या के आधार पर स्थित समाजवाद और उसकी आध्यात्मिक, भौतिक व्याख्या, की तुलना की है। एक जो वर्ग-

युद्ध उत्तेजित करता है और दूसरा जो वर्गों का सहयोग प्रतिपादित करता है, तथा फिर एक जो समानता का समर्थन करता है और दूसरा जो अन्याय का प्रतीक है। के मध्य उन्होंने तुलना की है, दूसरे शब्दों में यह तुलना एक ओर तानाशाही और दूसरी ओर समाज मे शक्ति के सन्तुलित विभाजन मे है, जिससे व्यक्तिगत विशेषता का सामाजिक एकता से सामंजस्य स्थापित किया जा सके, तथा भूतकाल से पूर्ण-तया सम्बन्ध-विच्छेद और परम्पराओ की निर्दोष रक्षा जो भूतकाल को वर्तमान मे ला उपस्थित करती है और वर्तमान को भविष्य के खींच लाने मे समर्थ बनाती है।

प्राचीन समाजवाद की इस व्यवस्था मे धर्म, परिवार, और जायदाद का लोप नही हुआ है बल्कि पुरोहित, आर्थिक दाव-पेच, और व्यक्तिगत स्वार्थों के नियन्त्रण द्वारा परिष्कृत किए गए है, *डा० भग-*वान दास के लेख का यह तर्क है और वे अपने लेख मे इतना अधिक ज्ञान, विद्वत्ता और बुद्धि का समावेश कर देते हैं कि इस अज्ञानी अध-विश्वासी और पथ-भ्रष्ट संसार को उनके वास्तविक जीवन-प्रद रूप को सिद्ध कर सकने के लिए इस सस्कृति के सागर से जल का नमूना खीच ला सकना असम्भव है, फिर भी इस अनवरत स्रोत की कुछ बूंदों का स्वाद हम लेगे, और अपने सन्देहशील मस्तिष्क को सन्तुष्ट करेंगे कि हम लोगों की सस्कृति और सस्थाओं मे अच्छी तरह और यथार्थ रूप मे डाली हुई सामाजिक व्यवस्था की नींव है जो बड़े पैमाने पर पूरे समाज मे सयुक्त परिवार का सरल आदर्श प्रयुक्त करती है, उसमे केवल थोड़ा हेर फेर किया गया है, और लेखक के कथना-नुसार इसमे चार सयुक्त परिवारो के साथ साथ सघ और उसमे से प्रत्येक के साथ अपने अनुविभाजक सयुक्त परिवार और आधीनस्थ विभागीय संघ की व्यवस्था की गई है जो सब संघ आध्यात्मिक वृद्धो की एक केन्द्रीय धारा सभा की देख रेख मे रक्खी गई हैं।

भारत की समस्या यह है कि आया हम इंगलैंड के समाजवाद की नकल करें जिसमे योरप के देशों द्वारा कुछ सुधार हुए हैं और जो योरप और एशिया के मध्य देश रूस मे पूर्ण हुआ है वा हम अपनी प्राचीन व्यवस्था के मूल की फिर से जाच करे और उसमें निहित युगो-प्राचीन सिद्धान्तो की पुनः खोज करे। जिन्होंने सब सन्तुलन के लिए भोजन और व्यवस्था का निश्चित क्रम रक्खा था और प्रतिष्ठा, प्रभुत्व, सम्पत्ति और सेवा के मध्य स्थापित किया था। पश्चिम ने परिवर्तन और उन्नति के नाम पर ऐसी परिस्थितिया पैदा की हैं जिन्होने दोष-पूर्ण वातावरण उत्पन्न किए हैं जिनसे छुटकारा पाने के लिए न तो पश्चिम को ही मार्ग सूझता है और न पूर्व को ही। इसने विश्राम का स्थान जल्दबाजी को, सेवा का धन, को उत्तमता का अधिकता को, देश के अन्दर खपत का निर्यात को, पद-मर्यादा का ठेके को और कर्तव्य का अधिकार को दे दिया है, यहाँ तक कि एक शब्द में यह प्रतिस्पर्द्धा की देवी की पूजा करता है जब कि हम लोग सहयोग की देवी के उपासक हैं यदि इस एक मुख्य भेद को मान लिया जाय तो दोनो सभ्यताओ और दोनो सामाजिक व्यवस्थाओं का अध्ययन सुगम हो जायगा।

विषाक्त वातावरण में पड़ी हुई पाश्चात्य सभ्यता द्रुतगामी मोटर कार बनाती है और दुर्घटनाओ से बचने के लिए अलग सड़के बनवाती है, यह रोगियो व घायलों को ढोने वाली एम्बुलेन्स गाड़ी की व्यवस्था करती है जो स्वयं भी इतनी ही तेज चाल से चलने वाली और ऐसी ही दुर्घटनाएं उत्पन्न करने वाली होती है। यह दोनों गाड़िया शोर-गुल करती है। उनसे बचाव के लिए शहरो मे "निःशब्द क्षेत्र" (साइलेंस ज़ोन) स्थापित किए जाते हैं। शहरो के कारण घनी और गन्दी बस्ती खड़ी होती है उनसे उद्धार पाने की योजनाएं भारी खर्चे से की जाती हैं। खर्च को पूरा करने के लिए कर बढ़ाये जाते हैं।

बढ़े हुये कर को देने के लिये मुनाफा अधिक करने की बात खडी होती है और एक ओर मुनाफा तथा कर बढने और दूसरी ओर कल-कारखाने तथा निर्यात की आपस में एक दूसरे के पीछे उस गीदड़ की तरह भगदड़ मचती है जो अपनी ही पूछ का शिकार करने निकलता है। निर्यात के लिए उत्पादन के कारण किसी भी तरह निश्चित परिमाण मे वस्तुए तैयार करने की बात खड़ी होती है और व्यापारिक बचत की चिन्ता के कारण आयात मे कमी करने के लिए विवश होना पड़ता है। इन सब बातों का परिणाम साम्राज्यवाद होता है जो सीधे सादे शब्दो मे सैनिकवाद और औद्योगिकवाद है। जब सब देशों का लक्ष्य यही साम्राज्यवाद हो जाता है तो वे एक दूसरे का शिकार करने के लिए कुत्तों का झुन्ड बन जाते हैं क्यो कि पूर्व के गीदड़ो ने जो अब तक दूसरो का शिकार बनना मजूर करते आ रहे थे जापान से लेकर मिस्र तक आत्म-सम्मान का विप्लव खड़ा कर दिया है।

योरप ने अब देख लिया है कि प्रत्येक देश सन्तोषजनक व्यापारिक बचत नहीं रख सकता क्योंकि यह इसी प्रकार है कि प्रत्येक परिवार तो शादी मे दहेज माग रहा हो किन्तु कोई स्वय दहेज देने के लिए तैयार न हो। इसका अर्थ यह है कि समाज मे दूल्हे तो सभी हो परन्तु दुलहिन का कही पता न हो। इसी प्रकार योरप मे सभी देश निर्यात करने वाले तो बनना चाहते हैं और कोई भी आयात करने वाला नही बनना चाहता, जब कि पूर्व ने योरप के इस माल के निर्यात को लेना नामजूर कर दिया है तो पश्चिम की आर्थिक व्यवस्था ने वहा के निर्यात करने वाले देशो को न्यूकैसिल तक कोयला ढोने को विवश कर दिया है।

पश्चिम का उद्योगवाद तराजू मे तौला गया है और हलका सिद्ध हुआ है। इसने केवल शहरों को खड़ा किया है जिसमे उसके साथ की

सभी बुराइयां, गन्दी बस्तिया और दिल दहलाने वाली घटनाएं, तेज दौड़ने वाली गाड़िया, एक पल भी न रुकने वाला शोर-गुल, बीमारियां और चकले, मिले और मज़दूरों का शोषण और अन्ततः धन की चाह, स्वार्थ-परता और पाप पैदा हुए हैं। नगर-रचना की योजनाएं, बालचर, गर्लगाइड्स्, निःशब्द क्षेत्र, अनाथालय, अस्पताल, आश्रम, वेश्याओं का रक्षागृह, मजदूरो के कानून, कारखानो के कानून, धर्म प्रचार के संगठन और समाजवाद यह सब उत्पन्न हुए हैं और हम भारत के लोग जान बूझ कर उन बुराइयो की नकल कर रहे हैं जो बहुत पहले ऐसी ज्ञात हो चुकी हैं।

हम इस बात को अस्वीकार नहीं करते कि धर्म, जायदाद और परिवार भारतीय समाज के आधार रूप रहे हैं और इनमे से प्रत्येक ने अपनी अधोगति की है किन्तु यह हम लोगो को उचित नही है कि किसी व्यवस्था का अध्ययन करते समय हम उसके गिरे हुए रूप को ले।

लगभग १००० वर्ष से अधिक दिनों से अर्थात् जब से कि विदेशियो का इस देश मे आगमन हुआ भारत की उन्नति रुक गई है, विदेशियों के धक्के से एक नया सघर्ष उपस्थित हुआ है और ऊपर वर्णित तुलना ने वर्णनातीत रूप का विनाश-कार्य किया है। हमे मनु की ओर ध्यान ले जाना चाहिए और भारतीय समाजवाद का उसके शुद्धतम रूप मे अध्ययन करना चाहिए तथा वह जिन पर आधारित हो उन चिरंतन सिद्धान्तो—जिसमे कुछ व्यक्तिवाद और व्यक्तित्व का अंश भोजन, जायदाद और परिवार की प्रधान घटना के साथ अध्ययन करना चाहिए और तब हम समझने मे समर्थ होगे कि प्राचीन समय के लोगो ने आंतरिक शान्ति के लिए व्यवस्था की थी तथा सार्वभौमिक, सामाजिक संगठन की व्यवस्था चलाई थी, उसके साथ ही वह भी व्यवस्था की थी जिसे हम व्यक्तिगत सगठन कहते हैं समाज केवल खड़े-खड़े समूहो मे ही विभाजित नही है बल्कि प्रत्येक व्यक्ति का जीवन आड़े-आड़े आश्रमो मे विभा-

जित हैं जिससे धन की लिप्सा सदा सेवा के आदर्श के आधीन कर दी गई है और अतर्राष्ट्रीय शान्ति सामाजिक शान्ति से उसी प्रकार सबंधित होती है, जिस प्रकार सामाजिक शान्ति पारिवारिक और व्यक्तिगत शान्ति से संबंधित होती है। जीवन के मुख्य चार विभाग चार मुख्य सघो के अधिकार मे होते हैं जो धार्मिक समर्थन पर आधारिक सामाजिक-आर्थिक नियमो द्वारा नियत्रित होते हैं। प्रत्येक विभाग के लिए पेशे, निर्वाह के साधन, जीवन यापन के ढग, और जीवन के उद्देश्य निश्चित होते हैं, और सघो के आधार पर बने समाज तथा वाह्यसत्ता के आधार पर बने समाज मे जो अंतर होता है, वह "एक ओर एक आत्म-पोषित, आत्म-प्रतिकारक, आत्म-नवीकृत, और आत्म-प्रचारक सजीव प्राणधारी और दूसरी ओर एक मृत यत्र के मध्य सदृश होता है जिसको दूसरे द्वारा बराबर देखने, निरन्तर कृत्रिम सफाई करने, पुर्जों मे तेल लगाने, मरम्मत करने, नया करने, पुर्जे बदलने, और कोयला पानी वा पेट्रोल आदि की शक्ति पहुंचाने की आवश्यकता होती है।"

डाक्टर भगवानदास द्वारा व्याख्या किए प्राचीन समाजवाद और पश्चिम मे उत्पन्न हुई अनेक व्यवस्थाओ वा प्रचलित अनेकवादों के विस्तार पूर्वक अध्ययन का साराश यहा पर थोड़ी जगह मे दे सकना संभव नही है। हीगेल के विचारानुसार भारत भी स्वीकार करता है कि "जनता पृथक पृथक व्यक्तियो का जमाव नही है जो कृत्रिम रूप से अपने पारस्परिक लाभ के लिए जान बूझ कर रजाबन्दी से सयुक्त हुए हैं, बल्कि आध्यात्मिक एकता है जिसके लिए और जिसके द्वारा प्रत्येक सदस्य का अस्तित्व होता है।" इस विचार से फेसिस्ट भावना उत्पन्न मालूम पड़ती है, जिसमे सघबद्ध राष्ट्र और व्यक्तियो के राष्ट्र के आधीन होने, भाग के पूर्ण के आधीन रहने की बात है, किन्तु इसमे अति कर देने से नतीजा यह हुआ है कि "फैसिस्टवाद की सामान्य धारणा एक दृढ़ अधिनायक-शासनव्यवस्था हो गई है।" इसमे कोई आश्चर्य की बात

नही कि इस प्रकार की दृढ़ अधिनायक-व्यवस्था व्यवहृत होने पर निरंकुश नौकरशाही हो जाती है जो फैसिस्टवाद तथा साम्यवाद दोनो तथा भारत मे राष्ट्रीय पूजीवाद का भी सामान्य रूप हो जाती है किन्तु बाबू भगवानदास कहते हैं कि व्यक्तियो की यह निष्ठुर पराधीनता इस अर्द्ध-शक्ति की अतिशयोक्ति है कि **'प्रत्येक सब के लिए है ।'** सत्य का दूसरा अर्द्धांश भी इतना ही महत्वपूर्ण है, वह यह है कि **'सब प्रत्येक के लिए हैं ।'** अर्थात् सूत्रात्मा जीवात्मा के लिए भी है और जीवात्मा सूत्रात्मा के लिए भी। मनु ने इन दोनो को परस्पर संमिश्रित किया है । उनके व्यक्तियों के **आश्रम धर्म** और समाज के **वर्ण धर्म** ताने और बाने रूप हैं, व्यक्ति भी एक पूर्ण वस्तु है खड नही ।"

लेखक निर्देश करता है कि मार्क्सवाद के सिद्धान्त के अनुसार सामंतशाही को दबा कर जमीदारो और धनिकवर्ग की मध्यवर्ग की व्यवस्था स्थापित होती है तथा मध्यवर्ग के शासन को अधिकारच्युता कर श्रमजीवी वर्ग की शासन-व्यवस्था प्रचलित होती है । वह भीं अंत में स्वयं विलुप्त हो जाती है । किन्तु भारत के विभागों से संबंधित व्यवस्थाओ में एक दूसरे को अधिकार-च्युत करने की बात नही है । भारत मे ऐसा नही है कि पुरोहितशाही के बाद सामंतशाही का जन्म हो, फिर इसकी जगह पूंजीशाही का जन्म हो, फिर श्रम-जीवीशाही शासन-प्रथा-प्रचलित हो । क्योकि भारत मे सब सहायक साधनों के रूप मे हैं जो केवल परस्पर सामंजस्य स्थापन योग्य ही नही हैं । बल्कि एक दूसरे के लिए अनिवार्य है । और विद्वान पुरुषो के नेतृत्व मे अनेक वैज्ञानिक साधनो द्वारा जान बूझ कर और दृढता पूर्वक अपने को संतुलित करने का उद्योग करती हैं जो सर्वांगतः उनके अभिप्राय को पूर्ण करते मालूम पड़ते हैं । विदेशी आक्रमणो ने समाज पर प्राचीन व्यवस्था के प्रभुत्व को आवश्यक रूप से मिटा दिया । आप चाहे फैसिस्ट राज्य

में जाय वा सोवियट राष्ट्र मे, आप को चार श्रेणी के व्यक्ति-विद्वान लोग, पराक्रमी व्यक्ति, सम्पत्तिशाली व्यक्ति और सेवक लोग मिलेंगे जो राष्ट्र और वर्गों का सहयोग सगठित करते हैं ऐसा राष्ट्र केवल सगठन वाला, केवल एक व्यवस्थित शक्ति नही होता, बल्कि राष्ट्रीय जीवन के सभी रूपो की मुख्यतम अभिव्यक्ति, राष्ट्रीयता का संयोजन होता है जिसमे चार श्रेणी के व्यक्ति होते हैं जो चार पेशेवर विभागों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे यथोचित रूप से इस प्रकार शिक्षित संतुलित और प्रयुक्त किए जाते हैं जिससे राष्ट्र और समाज सभ्य बने तथा अधिक से अधिक सार्वजनिक हित का निश्चय हो सके। ये चारों विभाग प्राणधारी शरीर के चार अग हैं जो व्यक्तिगत रूपो मे पृथक नहीं किए जा सकते। वे समाज के सिर, भुजा, धड़ और पैर हैं। उनके बीच समानता का प्रश्न नहीं है, बल्कि न्याय का है। यह समाज का ऐसा रूप है जिसने धन्धों के स्वार्थों का सतुलन कर वर्ग-युद्ध को मिटा दिया था। विद्या और शौर्य, सम्पत्ति और श्रम जो चार वर्णों के प्रतीक हैं, एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं।

अध्याय ११

दुष्ट मंडलियां और उनको तोड़ने के उपाय

पिछले अध्यायो मे यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि विदेशी शासन के अविछिन्न प्रभावो ने भारतीय सभ्यता की नीव और ढाचे को ही उलट देने का उद्योग किया है हम लोगो के सामने उस आदमी का सा काम है जिस के पास ऐसा मकान हो जो भूडोल में हिल डुल गया हो और न रहने लायक ही न रह गया हो बल्कि उसमे प्रवेश करना भी सम्भव न हो, बिहार के भूचाल पीड़ित स्थानो मे बहुत से ऐसे मकान देखने को मिल सकते हैं। नगरो मे सड़कों पर म्युनिस्पेलिटी की किसी गड़ी हुई लालटेन मे किसी शरारती लड़के के पत्थर मारने से शीशा टूटा हुआ हम देख सकते हैं उस शीशे को जोड़ने वाला एक मसाला बाजार मे मिल सकता है एक बढ़िया लकड़ी के चौखटे द्वारा भी उन टूटे हुए टुकड़ो को मिलाकर रक्खा जा सकता है। आज भारतीय सभ्यता और समाज इस टूटे हुए शीशे और चौखटे के रूप मे है और राष्ट्र-निर्माता के सामने पुनर्जीवित राष्ट्रीयता के भारी मसाले से उन टुकड़ो के जोड़ने का काम है। हम लोगो की अकाक्षा इस राष्ट्रीयता को इस रूप से विकसित करने की है जिससे सर्वांगीण आत्मानुभूति उत्पन्न हो किन्तु बीसवी शताब्दी मे राष्ट्रो की प्रवृत्ति पूर्ण और स्वावलबी होने के स्थान पर सबल होने की है। इसी कारण गावो के लिए हानिकर रूप मे नगरो की

उत्पत्ति हुई है। एक विनोदी व्यक्ति ठीक कहा है कि आधुनिक सभ्यता नगरी करण है। यह ऐसा मार्ग है जिसने नगरो के मनोविनोद और आमोद-प्रमोद तथा सुख-सुविधाओ की वृद्धि के लिए सभी शक्तियों और धन कोपो और बुद्धि को सोख लिया है और गाव नगरों की त्यक्त स्त्री की भाति हो गए हैं। उनका एक मात्र कार्य नगरो को जीवन-निर्वाह सामग्री पहुंचाना और अपने मत द्वारा नगरनिवासियो को ऊंचे पद और अधिकार पर पहुचाना है जिसमे वे गावो के मत-दाताओ के विरुद्ध कार्य कर उनकी दासता को और मजबूत करते हैं। जो नगर अनेक प्रकार की विदेशी वस्तुओ को दरवाजे २ वेचकर और वेरोक तथा निर्वाध महसूल द्वारा गावों की निर्वाह-सामग्री, रोज़ी और कारीगरी को चौपट कर देते हैं उन्ही के प्रति गावो की यह पराधीनता आधुनिक सभ्यता की सब से शोचनीय बात है जिससे गाधीवाद देश का छुट-कारा कराना चाहता है। यूरोपीय सभ्यता ने हमारे गावो को जहा नीच और पराधीन स्थान प्राप्त करा दिया है वहा गाधीवाद राजनीति, अर्थनीति और नीति मे और सच पूछिए तो संक्षेप मे कहने पर राष्ट्रीय जीवन मे गावों को नेतृत्व प्रदान करना लक्ष्य रखता है जिसे ईश्वर ने एक सघबद्ध पूर्ण बनाया है दो बिल्कुल भिन्न टुकड़ो-मालिक और नौकर, स्वामी और सेवक, ऋण-दाता और ऋणी, पूजीवादी और कुली बल्कि सक्षेपतया प्रकाश और अन्धकार मे अलग अलग न बॅट जाय।

पश्चिमी सभ्यता दुष्ट मडलियों की एक लड़ी हो गई है इसका पूरा ढग बुराई पैदा करना और फिर उसका इलाज ढूॅढना है। तेजी से दौड़ने वाली गाड़िया आविष्कृत होती हैं और उसके बाद धूल के बादल उठते हैं तथा सदा बढती रहने वाली दुर्घटनाए होती रहती हैं। गाड़ी यूरोपीय सभ्यता का प्रतीक है जिसमे गाड़ी के प्रतिचालक चक्र (स्टियरिग ह्वील) के पास बैठा हुआ आदमी आनन्द मे

रहता है उसे इस बात से क्या मतलब कि गाड़ी के पीछे के आदमी धूल मे भर जाय और आगे पड़ने वाले आदमी गाड़ी के पहिये के नीचे दब जाय, धूल को दबाने के लिए कोलतार की सड़के बनती है इस बढ़े खर्च को पूरा करने के लिए महसूल बढ़ाए जाते हैं, अतिरिक्त महसूल वसूल करने के लिए बेईमानी पैदा होती है। यह एक मडली है। इसी क्षेत्र में दूसरी मडली यह है कि दुर्घटनाओ को बचाने के लिए तेज़ चाल की गाडियो के लिए अलग सड़के बनाई जाती हैं, अलग सड़को के कारण जमीन के नीचे या जमीन के ऊपर अलग रास्ते बनाने पड़ते हैं जिनमें ज्यादा रुपया लगता है। ज्यादा रुपया, ज्यादा महसूल, बेईमानी, ज्यादती, भूखो मरना, जुर्म और मुसीबत शराबख्वारी, ज्यादा जुर्म, जेल, फिर इस पर अधिक राष्ट्रीय व्यय और उसके लिए अधिक सार्वजनिक कर, यही सब नतीजे होते हैं तेज चाल और जल्दबाजी के लिए दूसरी दुष्ट मंडली सड़क पर धूल का उठना है धूल बैठाने के लिये सड़क पर पानी का छिड़काव होता है या उन पर कोलतार पोता जाता है। कोलतार पुती सड़को मे कंकड़ की कुटी सड़क की अपेक्षा कई गुना खर्च अधिक पड़ता है। इससे फिर महसूल की बढ़ी हुई दर मे इजाफा करना पडता है। इससे म्युनिस्पेलिटी के महसूल असह्य हो जाते हैं। यह सब दर्दनाक बातें हैं।

दूसरी दुष्ट मडली लीजिये। रुपया समाज मे जादू की शक्ति हो गया है किन्तु सभी राष्ट्रसमान नही हैं। इस कारण संसार मे विनिमय शासन करता है। ब्रिटेन सुवर्णमान हटा देता है, विनिमय उतरता हैं यह इतने नीचे गिर गया था कि १९३२ की फरवरी मे विदेशी ऋण चुकता करने मे एक करोड पैंतीस लाख पौण्ड की हानि हुई। इस प्रकार जब विनिमय उतरता है तो निर्यात बढ़ता है क्योकि ऋण अधिक हो जाता है इस लिए विनिमय को चढ़ाया जाता है

और ब्रिटेन का अमेरिका को निर्यात गिर जाता है क्योकि अमेरिका को पौण्ड की कीमत के लिए डालर के रूप मे अधिक दाम देना पडता है ब्रिटेन का निर्यात व्यापार अव्यवस्थित हो जाता है इस कारण ऋण का देना रुक जाता है।

हम तीसरी मडली लें। सोना कागज़ी सिक्के की कोतल अमानत होने के अतिरिक्त अतर्राष्ट्रीय व्यापार का सतुलन करने के साधन के रूप मे कीमत भी रखता है। अमेरिका और फ्रास सोने का सचय करते हैं क्योकि बहुत से देश सुवर्णमान को छोड चुके होते हैं। वे देश अमेरिका के विदेशी व्यापार के प्रमुख प्रतिस्पर्द्धी बन जाते है। अमेरिका का निर्यात उतर जाता है इसलिए उसे अपने आयात की कीमत सोने में चुकानी पड़ती है ।

इस प्रकार सोने का सचय अपने समाप्त होने का मार्ग भी स्वय ही खोल देता है।

दूसरी दुष्ट मडली विनिमय के गिराने निर्यात के बढाने के सम्बन्ध की ऐसी थी जिसे एक देश ने किया तो दूसरे देश ने भी उसकी नकल की। यदि कुछ ऊचाई पर एक तालाब हो उसके बाध में कोई होशियार आदमी छेद कर अपने खेत मे पानी पहुंचा ले और दूसरे दिन यह मालूम पड़े कि गाव के अन्य सभी व्यक्तियों ने ऐसा ही किया है तो जो तालाब साल भर काम आए होता वह एक ही हफ्ते मे सूख गया होता।

इसी प्रकार बैंक का दर भी सुगम व्यवसाय के मार्ग मे एक वास्तविक हौवा बन गया है। जब यह गिरता है तो धन सुलभ हो जाता है उद्योग-धन्धो की वृद्धि होती है किन्तु विदेशी व स्थानीय साहूकारो द्वारा अमानत की रकम खतम हो जाती है। भरमार की जगह कमी पड़ जाती है और माग को रोकने के लिए बैंक दर बढता है, राष्ट्रीय ऋण चुकता करने का समय आ जाता है और बैंक दर कागजी सिक्के के नीचे उतर

जाता है इसका नतीजा यह होता है कि कागज़ी सिक्के और जमानत को कम फी सदी दर के सूद पर फ़िर से चालू करना पड़ता है ऐसा करने पर बैंक दर फिर चढ़ जाता है इंगलैंड कर को बढ़ा कर अपने बजट का सतुलन करता है। कर पहले से ही एक सीमा तक पहुँच गए हैं उनको कम करने के लिए शोर गुल मच रहा है अर्थ-मंत्री के लिए उसे कम करना जरूरी है किन्तु वह नही जानता कि बजट का किस तरह संतुलन किया जाय।

आयात-निर्यात-कर के सम्बन्ध में एक बात देखनी है। अपने उद्योग-धन्धो की रक्षा के लिए हम कर की वृद्धि करते हैं किन्तु उधर साम्राज्य के लिए विशेष सुविधा के नियम से भी बद्ध हैं और ओटावा का समझौता भी करते हैं।

इंगलैंड अपनी जरूरत का सब गेहूं उपनिवेशो से खरीदना चाहता है। रूस सरीखे अन्य देश अब तक इंगलैड को गेहूं देते थे वे अब इंगलैंड के हाथ अपनी उपज नही बेच सकते, इस कारण जहा पहले गेहूँ बेच कर वे उस कीमत में ही इंगलैंड से ही कले खरीदते थे वहां उनके अनाज की कीमत गिर जाती है और उनकी क्रय-शक्ति भी घट जाती है इस कारण साम्राज्य-गत विशेष सुविधा के नियम के कारण ब्रिटेन के निर्यात मे कमी होती है इगलैंड दो करोड़ तीस लाख पौण्ड का मक्खन साम्राज्य के अन्दर से ही मंगाता है और दो करोड़ चालीस लाख का मक्खन अन्य देशो से मगाता है (सब मिला कर सत्तर करोड़ रुपये का मक्खन लिया जाता है) यदि वह बेल्जियम और हालैंड से मक्खन नही खरीद सकता तो उनके हाथ वह अपना तैयार माल भी नहीं बेच सकता। इस कारण उसके निर्यात व्यापार को धक्का लगता है इस प्रकार चाहे व्यक्तियो की क्रय शक्ति देशो की उपज या उपजो की कम कीमत के कारण घटे वा देशो की क्रय शक्ति विदेशो से अदलाबदली न हो सकने से घटे और सोने तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अभाव

अन्त मे विश्लेपण किए जाने पर चीजों की अदला बदला ही है, नतीजा अनि वार्य रूप से यही होता है कि जितने ही अधिक रास्ते निकाले जायँ उतनी ही अधिक असफलता होती है प्रत्येक इलाज रोग को खराब ही कर रहा है क्योंकि कार्य और कारण एक दुष्ट मडली में होते हैं।

युद्ध आधुनिक और औद्योगिक परिस्थितियों से उत्पन्न परिस्थितियों को और भी पेचीदी बनाते हैं। औद्योगिक परिस्थितिया स्वयं ही अधिक पेचीदी हो गई हैं। ब्रिटेन द्वारा चुकता किया जाने वाला सयुक्त देश अमेरिका का युद्ध ऋण दो अरब अट्ठाइस करोड़ बीस लाख पौण्ड था जो बासठ वर्षों मे चुकाया जाने वाला था, जरमनी द्वारा दी जाने वाली क्षति पूर्ति की रकम ६५७६०००००० पौण्ड थी जो ५८ वर्ष मे चुकती की जाने वाली थी। जर्मनी ने कुछ दिनों तक चीजों के रूप में अपने देन को इगलैंड और फ्रास को चुकाया। और जहा फ्रास ने इगलैंड से मगाए जाने वाले कल-पुर्जो को लेना वद कर दिया था, वहा इंगलैंड को भी चीजे विदेशो से मिल रही थी, इस कारण उसको अपने कारखाने खोले रहने की आवश्यकता न थी। इस कारण विजयी देशो में बेकारी का बोल-बाला हो गया था, और विजित जर्मनी के कारखाने दिन रात चल रहे थे। इस तरह विजित जर्मनी ने विजेता इगलैंड और फ्रास को फसा लिया था, और इगलैंड मे बेकारी की सख्या एक करोड़ दस लाख तक पहुँच गई। जर्मनी मे बेकारी का नाम न था। किन्तु जर्मनी को कारखानो को चलाने के लिए पूजी कहा से मिलती थी? उसके साहुओ को ही यह पूजी देनी पडती थी, नही तो कारखाने वद रहते, क्योंकि जर्मनी के पास आदमी तो थे, किन्तु उनकी जेबों मे एक भी पैसा नही था। इगलैंड और फ्रास खूब खुल कर अमेरिका से ऋण ले रहे थे और उसे जर्मनी को अगाऊ रूप मे दे रहे थे। इसके कुछ बाद हिटलर का उदय हुआ। जर्मनी ने फ्रास और इगलैंड को क्षति-पूर्ति की रक़म चुकाना बद कर दिया, इसके बदले मे फ्रास ने अमेरिका

की किश्त रोक ली। नतीजा यह हुआ कि अमेरिका ने अपने ही ऊपर अपनी जनता का दो अरब पौण्ड का ऋण लदा पाया।

ये घटनाए और पूर्व मे पश्चिमी देशो द्वारा मडियो के खोये जाने के संम्बन्ध की घटनाएं स्पष्ट रूप से सिद्ध करती हैं कि शोपण का युग चला गया, फिर कभी न लौटने के लिए चला गया। पूर्व के सिर जीवन व्यतीत करने के पश्चिमी देश के परोपजीवी जीवन का अन्त आ पहुँचा है। पश्चिम के देश मे आपस मे गुट्ट बना कर अपना संहार करने के लिए एक दूसरे के साथ कट मर रहे हैं। भारत शान्ति पूर्वक अपनी राष्ट्रीय इमारत की पुनर्रचना कर रहा है और प्रसन्नता के साथ न तो गगन-चुम्बी महलो की आवश्यकता होगी न टूटे झोपड़ो की।

इस परिणाम पर पहुँचने के लिए हमे न तो सामाजिक ठेके का अनुसरण करना चाहिये जिसने बहुमत का शासन प्रचारित किया, ऐसा बहुमत जो हाथ उठाने भर का हो, दिमाग वा दिल से उसे कोई मतलब न हो, और न मानव-परिवार के श्रेणियों और वर्गों के विभागो के संघर्ष को दी गई कानूनी मर्यादा का अनुसरण करना चाहिये। दो शताब्दियो के खडहर के साथ उसे साम्राज्यवाद वा शोषण की आवश्यकता नही है। उसकी सभ्यता स्वावलबी और आत्म निर्भर होगी। अतिशय विपमता सदा ही मानवता के सर्वोच्च आदर्शों के विरुद्ध होती है। वह एक ओर दानवाकार द्रुमराज और दूसरी ओर नन्ही नन्ही वनस्पतिया खड़ी करना नही देख सकती। हम इस करुणा-जनक प्रस्ताव का समर्थन नही कर सकते।

"विचार इसलिए ठीक है कि उसके अनुयायी अनेक हैं, उनके जीवन या आचार का आदर्श चाहे जो हो।" "मानव-आत्मा का संचित अनुभव कि भलाई और सच्चाई स्वतंत्र वस्तुएं हैं, चाहे जितनी संख्या के व्यक्ति इन को ग्रहण करे वा विशेपता प्रदान करे, उनकी

म० गाँधी का समाजवाद

संख्या का इन पर प्रभाव नहीं" हमे अगक्रीर करना पड़ेगा और इसे गौरव प्रदान करना पडेगा। यह बात नहीं है कि हम प्रजातत्र को हीन बतलाते हैं वा उस पर सदेह करते हैं, वल्कि प्रजातंत्र स्वयं अपने असली रूप का खोटा रूप बन गगा है। वह पूंजी-वादियों, धनिक वर्ग और साहसी व्यक्तियो के स्वार्थ-पूर्ण छल-छद्मों को छिपाने के लिए एक प्रकार का मौखिक पर्दा बन गया है। इस हद तक इसका परिष्कार होना चाहिये और इसका परिष्कार सत्य और अहिसा के प्रयोग द्वारा निरतर ध्यान रखने से ही हो सकता है। ऐसी सावधानी के रहने पर लोग एक भूठे बचाव मे न फॅसा दिए जायॅगे जो मधुर किन्तु निद्रालु शब्द, प्रजातत्र से उत्पन्न होता है। हम लोगो को अपने अधिकार के लिए लडने की बात अब आगे न उठाते रहेगे, हम लोगो को अपने पड़ोसियों के प्रति कर्तव्य पालन के लिए प्रेरित करते रहेगे और उन्हे सत्य तथा अहिसा का मार्ग दिखायेगे, मनुष्यो को केवल अधिकार ही नहीं बतायेगे बल्कि उन्हें उनका कर्तव्य भी समझाते रहेगे, जीवन की नई योजना में अधि-कार और कर्तव्य एक तथा अविभाज्य हो जायगे जिससे भेड और भेडिया एक ही तालाब मे पानी पी सकेंगे, और बाज तथा पडुक एक एक ही घोंसले मे निवास करेगे।

———

अध्याय १२

रचनात्मक कार्यों की व्यवस्था

तीन कड़ियां जिन पर गांधी जी ने स्वाधीनता की इमारत खड़ी की है।

कांग्रेस अनेक अवस्थाओ को पार कर चुकी है पीछे की पीढ़ी के
लिए अपने पूर्ववर्तियो द्वारा उपयुक्त साधनों को तुच्छ बतलाना आसान
होता है फिर भी इसे मानना ही पड़ेगा कि पाश्चात्यवर्ती काल की
खोजे उन धारणाओं और विचारों का विकास ही होती है जो किसी
किसी आन्दोलन के इतिहास के पूर्व-वर्ती दशको मे अंकित हुए रहते
हैं। कांग्रेस की उल्लेखनीय और गौरव पूर्ण विजय विशेष कर भारत
की दृष्टि मे वह है जो सदा मानवता के लिए एक उदाहरण रूप
जाज्वल्यमान रहेगी और जिसे भारतीय क्षेत्र के राष्ट्रीय विवादो का
निपटारा करने मे हिंसा के ऊपर अहिंसा की विजय कहा जा सकता है।
भारत रूप मे एक प्राचीन काल का प्रसिद्ध प्रबल पूर्वीय देश एक नन्हे
आधुनिक टापू के विरुद्ध खड़ा है जिसने अपने बाहु-बल, अपनी साहसिक
भावना, अपनी कूट-नीति और परिस्थितियो के भौगोलिक दबाव तथा ऐति-
हासिक बल जीवन के लिए निरे संघर्ष द्वारा एक साम्राज्य स्थापित करने
मे सफलता प्राप्त करली है जिसमे कहा जाता है कि सूर्य कभी नहीं
डूबता किन्तु परिहास मे यह भी कहा गया है कि ब्रिटिश साम्राज्य मे

काग्रेस को जो सफलता मिली है, उसे राजनीतिक सफलता के माप-दंड से नहीं तौलना चाहिए बल्कि उसे दुर्बोध और स्पष्ट निर्णय-शक्ति के माप से नापना चाहिये केवल जिसके ही द्वारा हम किसी सम्पूर्ण देश की दासता की भावना और उतना ही अपनी मुक्ति की शीघ्रता की भावना के निश्चय को माप सकते हैं। काग्रेस ने इस दासता से मुक्ति पाने के लिए भूतकाल मे अनेक प्रकार के उद्योग किए थे। एक सुधारों का युग था, विरोध प्रदर्शन का भी समय था, फिर होम रूल का भी ज़माना दिखाई पड़ा, उपनिवेशों के ढग पर स्वशासन स्थापित करने का आन्दोलन भी दिखाई पड़ा, यदि संभव हो तो साम्राज्य के अन्तर्गत और आवश्यक हो तो साम्राज्य के बाहर स्वराज्य और अंत में पूर्ण स्वतन्त्रता व पूर्ण स्वराज्य के आन्दोलन का समय आया। जिस समय योरप मे साम्राज्य विध्वंस हो रहे हों, राजा वध किए जाते हों, जहा राजनीति केवल दृष्टि-कोण मे ही कलहमय नहीं हो गई हो, बल्कि भाव मे कड़वी हो रही हो, ऐसे समय मे पूर्ण स्वराज्य उद्देश्य रखने की घोषणा करने के लिए केवल वाक्‌पटुता और एक राजनीतिक की युद्धकला की ही आवश्यकता न थी, बल्कि आदर्श और चरित्र की अदम्य पवित्रता की आवश्यकता थी जिसे वैसे ही एक महात्मा, दार्शनिक और पूर्ण उन्नत पुरुष ने प्राप्त और व्यवहृत किया हो।

अहिंसा के सिद्धान्त की खूबी संसार के अन्य देशों को समझना है और भारत मे बहुसख्यक जनता द्वारा आचारित होना है जो पश्चिमी सभ्यता और राजनीति के पश्चिमी आदर्शों के प्रभाव मे आ गए हैं। और यह सिद्धान्त नितान्त रूप से मनुष्य की स्वाभाविक उत्तमता पर आधारित है जिसके बिना ससार का कुशल प्रत्येक क्षण और प्रत्येक घड़ी खतरे मे है। इसलिए इसका अगीकार किया जाना और लोक-प्रिय होना इस निर्विवाद रूप पर निर्भर करता है कि इस संसार मे मनुष्य का कर्तव्य

शत्रु को विजय करना नहीं है, बल्कि उसे अपने मत का बना लेना है। यह इस बड़े सत्य पर भी निर्भर करता है कि इस संसार में कर्तव्य का उतना ही स्थान है जितना अधिकार का। अधिकार की धारणा संभव नहीं हो सकती जो एक ही समय अपने में ही अनुमानित होने योग्य कर्तव्य की भावना भी नही रखती। जब एक बार लोग यह मान लें कि अधिकार के साथ साथ कर्तव्य भी होता है तो जिसे कर्तव्य माना जाता है वह वास्तव में अपने दृष्टिकोण से देखने पर अपने पड़ोसी का अधिकार मालूम पड़ेगा। इस आवश्यक सिद्धान्त पर आधारित होकर भारतीय स्वराज्य के दर्शन की पुनर्रचना की गई है जिससे यह परिणाम अनिवार्य हो गया है कि पूर्ण स्वराज्य की मांग करते हुए हम एक राष्ट्र के प्रति दूसरे राष्ट्र की दासता को उखाड़ फेंक रहे हैं, जिसका फिर यह अर्थ है कि प्रत्येक पुरुष या स्त्री को अपने पड़ोसी पुरुष या स्त्री के प्रति अपनी दासता को उखाड़ फेंकना चाहिए। जब व्यक्ति अपना जुआ फेंकेंगे, गाव वाले भी अपना जुआ फेंकेंगे और इस प्रकार प्रत्येक गांव स्वावलंबी और समाज कहे जाने वाले व्यक्तियों के समूहों के लिए निश्चित स्वाधीनता युक्त बन जायगा।

आधुनिक राजनीति का परिष्कार

समाज तुरन्त भय और लालच के दो भारी दैत्यों से मुक्त हो जाता है, जो संसार के सब अवगुणों के जनक हैं। आदमी को उस समय भय घेर लेता है जब उसकी आकाक्षाएं पूरी नहीं होतीं। और जब मनुष्य अपने पड़ोसियो से भय खाता है तभी वह लालची बन जाता है। इस प्रकार लालच से भय उत्पन्न होता है और भय से लालच। जब दोनों मिटा दिये जाते हैं तब मनुष्य को यह अनुभव करने का अवसर मिलता है कि उसके पड़ोसी की भलाई उसकी ही भलाई है, पड़ोसी की तन्दुरुस्ती से उसकी तन्दुरुस्ती बनती है, पड़ोसी के सुख से

उसका कुशल होता है और मनुष्य एक दूसरे से पृथक स्वतंत्र नहीं हैं, बल्कि वे एक दूसरे पर आश्रित हैं, तब ऐसा होगा कि पारस्परिक हित और हिन्दुओ की नित्य की पुरानी प्रार्थना कि सारा ससार शान्तिमय और सुखी रहे, सत्याग्रह को समझने के लिए कुजी वन जाएगे। इसी कारण काग्रेस ने अहिसा की भावना से ग्राम-उद्योगों और कारीगरियों के पुनरुत्थान, स्वावलवी ग्राम-जीवन की पुनर्स्थापना और हम लोगो की आधुनिक राजनीति के परिष्कार के लिए जोर दिया है।

इस प्रकार गाधी जी ने भारत को आर्थिक, सामाजिक और नैतिक तीनों क्षेत्रो मे एक साथ ही पूर्व काल के पद पर पहुँचाने का प्रयत्न किया है। कुछ दिनों तक आन्दोलन चलने के वाद खद्दर भारतीय स्वराज्य का केन्द्रवर्ती सिद्धान्त वन गया, अव खद्दर एक विद्रोहात्मक सस्था का चिन्ह नही रह गया है, वल्कि पुनर्जन्म होती हुई राष्ट्रीयता की मुहर हो गया है। इस परिणाम तक पहुंचने के लिए गाधी जी ने कितने अनशन किये हैं। किन्तु जिस दूसरे सुधार के लिए गाधी जी ने अपना जीवन अर्पित कर देना चाहा और आमरण अनशन करने की घोषणा की वह अस्पृश्यता का निवारण है। अपने जीवन मे इन दो विस्मय-जनक कार्यों को कर गाधी जी के सामने तीसरा सुधार मद्य-निषेध का है। इस प्रकार आर्थिक क्षेत्र मे खद्दर, सामाजिक क्षेत्र मे अस्पृश्यता-निवारण और नैतिक क्षेत्र मे मद्य-निषेध ये तीन कड़िया हैं जिन पर अहिसा के इस शिल्पकार ने स्वराज्य का भवन खड़ा किया है।

अहिंसा की कलानिपुणता

बहुत से लोग कहते हैं कि साधारण लोगो के व्यवहार के लिए अहिसा की कलानिपुणता बड़ी दुष्कर है। हमे इस प्रश्न का उत्तर

देना है। धर्म की कलानिपुणता और ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण साधारण व्यक्तियों की बुद्धि मे आने के लिये बहुत दुष्कर है, फिर भी वे सभी लोगों के लिए स्फूर्ति और प्रेरणा उत्पन्न करने के प्रबल साधन हैं जो इस संसार में अपने विविध कर्तव्यों का पालन केवल सुव्यवस्था की भावना से ही नही, बल्कि बन्धुत्व की भावना से भी करते हैं। जब बुनियादी सिद्धान्त समझ लिया जाय तो सत्याग्रह सरल मार्ग हो जाता है। निदान जिन सिद्धान्तो पर भूत कालों मे सभी धर्मों की स्थापना की गई थी, वे नितान्त सरल थे, फिर भी उनके चतुर्दिक अत्यधिक जटिल दर्शनों का जन्म दिया गया किन्तु दर्शनों की जटिलता ने सिद्धान्तो की सरलता को सम्पूर्ण राष्ट्र के जीवन और उस पर आधारित धर्मों की विजय के जीवन में व्याप्त होने से नही रोका।

हम लोगों ने अपने समय में ही देखा है कि किस प्रकार सत्याग्रह के भद्दे प्रारम्भ ने पहले निष्क्रिय प्रतिरोध का रूप धारण किया, जो एक गर्व और कड़ुवाहट का आन्दोलन था, वह कुछ घृणा और हिंसा तथा शायद प्रतिकार की भावना से भी बचा नहीं था, किन्तु यह शीघ्र सविनय अवज्ञा रूप मे विकसित हुआ और गाधी जी को लोगो को यह समझाने मे बड़ा प्रयत्न करना पड़ा कि आन्दोलन के इस पहलू का यथार्थ प्रेरक सिद्धान्त अहिंसा है। लोगों ने जब यह अनुभव किया कि विशेषण भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितनी संज्ञा, तब सत्याग्रह का संचालन किया गया। अतएव अहिंसा केवल निषेधात्मक बात ही नहीं रह ग ई बल्कि एक निश्चित शक्ति बनी जिसने अपने को उस प्रेम में प्रदर्शित किया "जो दूसरो को नहीं जलाता, बल्कि स्वयं जल कर भस्म हो जाता है।"

सत्याग्रह उत्पत्ति और दृष्टिकोण में नितान्त रूप से भारतीय है।

समय समय पर प्राचीन ऋषियों के सत्य और अहिंसा से चिपके रहने और राजाओ तथा योद्धाओ द्वारा प्रचंड रूप से किए गए अपने प्रति-प्रहारो का शमन करने के लिए सरल मार्गों को निकाला था। इस को प्रबल अस्त्र रूप मे व्यवहार करने के लिए केवल इतनी ही आवश्यकता है कि सत्याग्रही अपने को निश्चित रूप से सत्य का पुजारी समझे और इस कारण मनुष्य, सरकार, समाज, निर्धनता और मृत्यु का भय विल्कुल छोड़ दे। ऐसी साधना की सहायता से ही आत्म-त्याग और विनम्रता की सच्ची भावना उत्पन्न होती है और इन दोनों से उसके अनुयायी में साहस का सचार होता है। और जो राजनीति इस नए सिद्धान्त से प्रतिपादित की जायेगी वह तुरन्त परिष्कृत और आध्यात्मिक भावना पूर्ण हो जायगी, इसी कारण वर्षों की कैद के वाद काकोरी के कैदियों और ऐंडमन के बदियों में सब ने अपने आतकवादी सिद्धान्तों को छोड़ कर अहिसा के बल को अगीकार करने की तुरन्त घोषणा की। एक नया युग प्रारम्भ हो गया है—जो केवल भारत के लिए ही नहीं है, बल्कि सारे ससार के लिए है और यह हम लोगों की आशा है कि युद्धों के बीच हम अपने ही समय मे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को घृणा और युद्ध के स्थान पर प्रेम और शान्ति के निर्णय द्वारा निर्णीत होते देखेंगे।

लुप्तप्राय ग्रामधंधों की पुनस्र्थापना

हमे इस सिद्धान्त की बातों को बताने की आवश्यकता नहीं जिन पर ग्राम-उद्योगों और उनमे सर्वश्रेष्ठ खद्दर द्वारा राष्ट्रीय जीवन के पुन-निर्माण की संयोजना और सचालन पिछले वर्षों मे किया गया है। फिर भी लोग इस मामूली बात को नहीं जानते कि किसी समय केवल हाथ से काते और हाथ से बुने कपड़े से इस देश की सारी आवश्यक-ताएं पूरी होती थीं, वे यह अनुभव नही करते कि ईस्ट इन्डिया

कम्पनी का इस देश में आगमन इस देश के समुद्रतटीय नगरों मे बुने कपड़ो को संग्रह करने के लिए हुआ था जहा कम्पनी की कोठिया बनी थी जिसका अर्थ गोदाम वा भंडार होता है। उस समय इंजिन वा कारखाने नही थे। १६३२ ई० तक भाप का इंजिन आविष्कृत नहीं हुआ था। उन कोठियो में कपड़े जुटा कर रक्खे जाते और बेच कर लाभ उठाने के लिए विलायत भेजे जाते थे। उन्हे इस देश से ले गए कपड़े पर भारी मुनाफा, यहा तक कि ३०० फी सदी तक, मिलता था, वे कपड़े जहा पहले इगलैंड के धनिक घरो मे फर्श पर बिछाये जाते थे महा-रानियो की लज्जा ढकने लगे। जिन व्यापारिक कम्पनियो के कारण इंगलैंड के माल की क़ीमत बहुत घट गई उनका लोग मखौल उड़ाते थे, किन्तु बाद में मुर्शिदाबाद के रेशम ने अंग्रेज़ी समाज में घर किया और इगलैंड के बड़े-बड़े सरदारों और अमीरों ने रेशमी पहनावा पहनना प्रारम्भ किया।

भारतीय माल की बिक्री पर दंड

यह बहुत प्रसिद्ध बात है कि सन् १७०० ई० में प्रत्येक अंग्रेज को भारतीय रेशम पहनने पर ५ पौंड जुरमाना किए जाने का कानून पास हुआ था। सन् १७३५ ई० में एक कानून बना कि भारतीय रेशम बेचने वाले प्रत्येक अंग्रेज पर २५ पौंड जुर्माना होगा। इतना ही नहीं, इंगलैंड मे लोग और भी आगे गए, और यह कानून पास किया कि जो कोई इंगलैंड मे ऊन के अतिरिक्त किसी दूसरी चीज़ का कफ़न मुर्दे के ऊपर रक्खेगा उस पर ५ पौंड जुर्माना होगा। उन्होंने इंगलैंड में भारत के रेशम के आयात का प्रतिकार करने के लिए आयात-निर्यात-कर निर्धारित किया।

इस प्रकार उन्होंने विदेशी कपड़े की बाढ़ से अपने देश की रक्षा की। इसी समय भाप के इंजिन का आविष्कार हुआ और सूत कातने

तथा बुनने की कलों मे इजिन का इस्तेमाल हुआ। उसका परिणाम सरकार की आयात-निर्यात-कर नीति की अपेक्षा बहुत ही अधिक प्रभावशाली और विस्मयजनक हुआ।

इगलैंड मे सूती कपड़े का उत्पादन बहुत अधिक होने लगा क्योंकि कले गजो मे कपड़े नही तैयार करती, बल्कि गाठ की गाठ तैयार करती हैं। वे विकराल दैत्य हैं जिनके भोजन के लिये तोला रत्ती वा सेर पाव मे जरूरत नही पड़ती बल्कि सैकड़ों हजारो मन की आवश्यकता होती है। इसलिए पहले-पहल भारत मे कपड़ा आना प्रारम्भ हुआ। जहा १८०३ ई० मे केवल ३ लाख का कपडा आया वहा १८२९ ई० मे २९ लाख का और १९२९ में ६६ करोड़ रुपये का कपड़ा और ६ करोड़ रुपये का सूत आया। इस प्रकार भारत लकाशायर की एक अच्छी मडी बना। और ब्रिटिश साम्राज्य ने भारत मे कानून और व्यवस्था, भू-कर की व्यवस्था वा विश्वविद्यालय की शिक्षा-पद्धति वा कचहरियो, कालेजों, और धारा-सभाओ वा विहित स्वार्थों युक्त कुलीन वर्गों द्वारा साम्राज्य की स्थापना नहीं की, बल्कि लकाशायर तथा यान्त्रिक बल द्वारा चालित करघो द्वारा की।

भारत का व्यापारिक अपहरण

इगलैंड द्वारा भारत का अपहरण अनेक प्रकार है, केवल भूमिगत, सास्कृति और व्यापारिक ही नही है। कदाचित व्यापारिक अपहरण इंगलैंड के लिए सब से बड़ा लाभ है क्योंकि इगलैड मे लोगों को अपने देश की सीमा के अदर की उपज से केवल ५ सप्ताह के लिए ही भोजन मिल सकता है, बाकी ४७ सप्ताह के लिए देश के भोजन की सामग्री बाहर से मगानी पडती है। इस के लिए उन्हे दाम देने की आवश्यकता है और सोने चादी रूप मे असीम काल तक मूल्य चुकाते जाना एक असंभव बात है इस कारण वे चीजो रूप मे ही देते हैं।

वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पड़े पैमाने पर चीजो की अदला बदली ही है, जिस में माल की कीमत माल द्वारा ही चुकाई जाती है अर्थात् जिस में निर्यात आयात की कीमत चुकाता है। इस प्रकार यह केवल इंगलैड के लाभ की ही बात नही है बल्कि मुख्य आवश्यकता है कि वह भारत द्वारा विलायती माल खरीद करावे। अन्यथा उसे भूखों मरने की नौबत आवेगी क्योकि खाद्य सामाग्री विलायत मे आयात न की जा सकेगी। इंगलैड द्वारा भारत के व्यापारिक उपहरण का यही रहस्य है।

इस बात का अनुभव हम लोगो ने एक प्रकार से १९०५ ई० मे किया जब बंग-भग के विरोध-प्रदर्शन रूप मे हम लोगो ने स्वदेशी वस्तुएं खरीदने का निश्चय किया। उस समय केवल इन्हीं चीजों पर ध्यान दिया गया था—कपड़ा, साबुन, मोमबत्ती और कलई के वर्तन। बाद मे जब बहिष्कार-आन्दोलन ज़ोरों पर हुआ तो नर्म दल के नेताओं ने लोगों का जोश ढंडा करने के लिए बहिष्कार के स्थान पर स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग का प्रचार करना प्रारम्भ किया। यह १९०८ मे श्री गोखले की स्थिति थी। उस समय भी लोगो को स्वदेशी के लिए त्याग करने को कहा जाता था, क्योकि सरकार इन उद्योगो की सहायता नहीं कर सकती थी। और लोगों द्वारा त्याग करने की बात इसमें कही जा रही थी कि वे महँगे दाम पर भी घटिया कपड़ा, ज्यादा दाम देकर भी मोटे कपड़े पहने।

अतएव कपड़े को गैरसरकारी राष्ट्रीय सहायता देने का यह सिद्धात काग्रेस के नम्रदल के प्रस्ताव में भी था जिस पर उनका प्रभुत्व १९०८ से १९१५ तक रहा, होमरूल आन्दोलन में भी स्वदेशी का ही आन्दोलन था। किन्तु जब गाधी जी सामने आये तो स्वदेशी का आन्दोलन अधिक व्यवस्थित हुआ और उसके लिए अधिक त्याग की माग की गई, लोगो को केवल हाथ से बुने कपड़ों को ही इस्तेमाल

करने को नही कहा गया, जैसा बग-भग के समय और होमरूल आन्दोलन के समय होता था बल्कि हाथ से कते और हाथ से बने कपड़े पहनने की माग रक्खी गई, सरकार भी भारत के हाथ के करघे से बुनने वाले जुलाहों को सहायता करने की आवश्यकता से असावधान कभी नहीं रही है और पिछले दिनों मे हाथ की बुनाई के धन्धे को सहायता देने और दृढ़ करने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा १५ लाख रुपया सालाना की अच्छी रकम दी गई है।

खादी की सहायता

किन्तु जब उसी जुलाहे को हाथ से कते सूत से कपड़ा बुनने को कहा जाता है तो क्या होता है ? वह सूत, वह कपड़ा, जुलाहा, सगठन-कर्त्ता, और इस प्रथा को चलाने वाली राजनीति विद्रोही घोषित की जाती है, सौभाग्य से वैसे दिन व्यतीत हुए और ऐसा भी समय आया जब स्वयं सरकार के ही काग्रेसी मंत्री वही खद्दर पहनने लगे, और सभाओ मे भारी जन-समूहो को वैसा ही कपड़ा पहनने और गरीबों की सहायता करने के लिए उत्साहित करने लगे ताकि धन का प्रवाह गावों से कस्बों की ओर, कस्बो से नगरों और नगरों से समुद्र-पार न बह कर नगरों से कस्बों और कस्बों से गावों तथा गावों से गरीब विधवाओं, असहाय स्त्रियो और वृद्धा माताओं की ओर बह सके।

लोगों ने उपहास के साथ पूछा है, कि क्या एक आने की मजदूरी की ओर झुका जा सकता है जब कि हाईकोर्ट मे एक वकील किराए की गाड़ी बुला लाने के लिए नियुक्त लड़के को चार आने मजदूरी देता है। यह बिलकुल ठीक है। ऐसी नौकरी मे लगा हुआ लड़का अच्छी मजदूरी पाता है। लेकिन हाईकोर्ट हर एक गाव मे नहीं होते वे केवल ५, ६, नगरों मे ही पाए जा सकते हैं। इस देश मे जहा

साढ़े सात लाख गाव और दो हजार आठ सौ कस्बे हैं इनमें रहने वाले लोगो पर क्या बीत सकती है जब कि आप हाईकोर्ट वाले कुछ शहरो मे किराए की गाड़ी बुलाने वाले नौकर की चार आने मजदूरी पाने की बात ही सोचें, क्या आपको मालूम है कि हम लोगो के लेखानुसार प्रत्येक भारतीय की औसत आमदनी तेइस रुपया है और लार्ड कर्जन ऐसे प्रतिक्रियावादी वाइसराय के हिसाब से अड़तालीस रुपया है। और उनका तखमीना चार रुपया महीना या दो आना रोजाना होता है। यदि ऐसी बात है तो क्या उन दो आनो में एक आना और जोड़ने से और वह आना उन लोगो को दिलाने से कुछ खो सकते हैं जो अपने घरो की पर्दगी में पड़े रह सकते हैं और अपनी फुरसत के समय मेहनत कर सकते हैं जो उनके लिए काम के बजाय मनोरंजन ही हो? और हाल ही मे महात्मा गाधी ने कताई की मजदूरी एक आने की जगह दो या तीन आना तक बढ़ा देने पर जोर दिया है। उन्होने कहा है कि आठ घन्टे कताई और एक घन्टे धुनाई की रोजाना मजदूरी आठ आने से कम नहीं होनी चाहिए, और अपने सहकारियो द्वारा ध्यान दिलाए जाने पर व्यावहारिकता के कारण ही मजदूरी आठ आने की जगह दो, तीन, चार आने करवा दी है।

श्रम और सम्पत्ति

यह दरें अनेक स्थानो मे चालू कर दी गई हैं, और खद्दर के कार्यकर्ताओ को लोगो की इस आलोचना के विपक्ष भी कि खद्दर का दाम जहा पहले ही अधिक था वहा अब और भी अधिक किया जा रहा है नई दरें स्वीकार करनी पड़ी हैं, फिर भी वे बढ़ रही हैं, गरीबो की सहायता के लिए धनिको को त्याग करने की आवश्यकता है धनिकों की सम्पत्ति गरीबो की मज़दूरी से पैदा होती है, और धनी व्यक्ति के लाभ के दृष्टिकोण से भी मजदूर को मजदूरी के योग्य होना

चाहिये और उसकी मजदूरी उसके श्रम के योग्य होनी चाहिये, यदि श्रम सम्पत्ति उत्पन्न करता है तो यह उचित ही है कि श्रम दृढ और समर्थ हो जिससे धनिक वर्ग में वह अधिक धन खड़ा कर सके। इस दृष्टिकोण से भी किसी को कताई की मजदूरी बढने पर कदापि एतराज नहीं करना चाहिये, इस प्रकार अर्थ-शास्त्र, नैतिकता और राजनीति के दृष्टिकोण से देखने पर खद्दर को अपने लिए पिछले अनेक वर्षों मे दिए गए ध्यान और तत्परता के लिए लज्जित होने का कोई कारण नही।

खद्दर की परिभाषा

अखिल भारतीय चर्खा-सघ ने जो खद्दर के उत्पादन और वितरण के लिए काग्रेस द्वारा नियुक्त सस्था है, कुछ नियम निश्चित किए हैं, जो इस धंधे की उन्नति के लिए निश्चित हैं और वास्तविक रूप में खद्दर की यह परिभाषा की है कि वह केवल ऐसा ही कपडा नहीं है जो हाथ के कते सूत से हाथ के करघे पर बुना गया हो, बल्कि वह कपड़ा है जिसके तैयार करने मे प्रत्येक कारीगर को चाहे वह धुनिया, कातने वाला, बुनने वाला, छीपी, रगरेज, वा धुलाई करने वाला हो उचित मजदूरी दी गई हो। इसलिए खद्दर की कानूनी परिभाषा चाहे जो कुछ हो किन्तु राजनैतिक परिभाषा जो आर्थिक परिभाषा भी है यह है कि—खद्दर वह कपड़ा है जो कि अखिल भारतीय चर्खा-सघ द्वारा नियुक्त व स्वीकृत मजदूरी पाने वाले कारीगरों द्वारा तैय्यार किया गया हो, इसी कारण जनता से प्रमाणित दुकानों का ही खद्दर खरीदने की बात कही जाती है, लोगों में सब तरह का कपड़ा बाजार मे रखने का बहुत अधिक प्रलोभन हो रहा है, ऐसी जटिल अवस्था मे खद्दर के प्रमाणित रूप मे उत्पादन और वितरण करने के नियंत्रण का अतिरिक्त कष्ट अखिल भारतीय चर्खा संघ ने

अपने ऊपर लिया है, प्रान्तीय सरकारो में भी इसकी माग उत्पन्न हो रही थी। अखिल भारतीय चर्खा संघ या उसकी प्रमाणित संस्थाओं द्वारा आज कुल जितना खद्दर तैयार हो रहा है वह किसी एक प्रान्तीय सरकार को भी भिन्न २ आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं होता, यदि सरकारो ने अपने अस्पताल, पुलिस और उनके द्वारा वर्दी दिए जाने वाले नौकरों के लिए खद्दर लेना निश्चित किया होता।

यह बात विश्वस्त रूप से मालूम हुई है कि डि० बोर्ड, म्युनिस्पल बोर्ड जब खद्दर खरीदना चाहते हैं तो वे अप्रमाणित संस्थाओ से भी तखमीना मागते हैं, यह बात रोकी जानी चाहिए। डि० बोर्डों के काग्रेसी प्रेसीडेन्ट इस बात को निःसंदेह जानते हैं कि ऐसी अप्रमाणित संस्थाओं को प्रश्रय व प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिए, इसलिए ऐसी संस्थाओं से इस प्रकार तखमीना मागना य मंजूर करना उनके लिए अनुचित है, इसलिए हम लोगों ने इस सम्बन्ध के सभी अधिकारियो से प्रार्थना की थी कि वह ऐसी अप्रमाणित संस्थाओ से खद्दर न लें।

अब इस अवस्था में खद्दर की प्रशंसा का बखान करना व्यर्थ है, खद्दर ने समय के प्रहारो और परिस्थितियों को सहन कर लिया है, या सार्वजनिक आलोचना के प्रहारों को पार कर चुका है, यह उपहास और व्यग के दिन देख चुका है जो प्रारम्भ होने के काल में प्रत्येक प्रगतिशील आन्दोलन को भोगना पड़ता है, इस ने निरपेक्षता और उदासी भी अपने प्रति देख ली है, इसने सर्वसाधारण द्वारा अपने प्रचार का समय देखना प्रारम्भ किया है। वह समय शीघ्र ही आ सकता है, जब लोग तुरन्त यह अनुभव करने लगेंगे कि उनके हृदय गरीबो की सहायता के लिए गावो की ओर जाने चाहिए, तथा धनिक यह अनुभव करने लगेंगे कि उन के पास जो बचा हुआ धन है वह गरीबो के सुख के लिए धरोहर की भाति हैं, और यह गरीबों का अधिकार है कि वह अपने लिए भोजन, वस्त्र और रहने का अधिकार प्राप्त करे, तथा यह

धनिक वर्ग का कर्तव्य है कि वह अपने गरीब बन्धुओं को जीवन की यह आवश्यक वस्तुएं प्रदान करे।

अपनी रचना का मालिक

खद्दर घर की पवित्रता रक्षित रखता है, परिवार को एक साथ रहने देता है, और कारीगरी की तैय्यार वस्तु कारीगरी की जायदाद बनाता है जिसे वह चाहे इस्तेमाल करे, जमा रक्खे, बेचे, गिरो रक्खे, वा जिस ढग से वह चाहे वैसा करे, वह रचयिता होता है और अपनी रचना का मालिक होता हैं, वह अपने ही घर मे रहता है, किन्तु उस का घर सिर्फ कारखाना ही नहीं होता है बल्कि एक स्कूल भी होता है जिसमे उसके बच्चे अपने माता-पिता की गोद मे पुश्तैनी कारीगरी को सीखते हैं, घर का हर एक आदमी उस धन्धे से संबध रखने वाले किसी न किसी भाग से सम्बन्ध रखता है और वहा ऐसी कोई बात नहीं होती कि केवल कोई बेजोड़ बेमेल मशीन सम्बन्धी निर्जीव काम का कोई निश्चित भाग कारखाने मे करना पड़े और सिर्फ मजदूरी से मतलब हो, कारीगर अपना ही मालिक होता है और उसे जब जरूरत हो छुट्टी ले सकता है, उसे दूसरे के पास आवेदन पत्र भेजने की जरूरत नहीं होती, शादी हो, मौत हो, कोई बीमारी हो, या सिर्फ कुछ तबीयत भारी हो, उस दशा मे वह एक दूर के ऐसे मालिक की दया का भिखारी नहीं होता जो एक दूर की जगह मे रहने वाला, अविचारशील सहानुभूति-हीन और निष्ठुर हो जिसका एक मात्र ध्यान सिर्फ धन कमाने का हो, वह अपनी इच्छानुसार ही रहता और काम करता है और घूमता फिरता है, उसके समय का नियत्रण उसके ही हाथ मे रहता है, भारतीय सभ्यता की बुनियाद कायम करने वाले ग्राम-उद्योगों के प्रभुत्त्व को इस बीसवी शताब्दी मे चुनौती नही दी जा सकती, जब जापान से लेकर मिस्र तक चीन, अरब, फिलस्तीन, सीरिया, ईरान,

अध्याय १३

मद्य-निषेध

मद्य-पान ससार का एक वहुत बड़ा अवगुण है। करोड़ों निर्धन और हजारो धनी व्यक्ति इस भीपण अवगुण के शिकार वन कर अपने स्वास्थ्य, सम्पत्ति और जीवन के सुख को वर्बाद कर रहे हैं। पाश्चात्य लोगो की दृष्टि मे मद्य-पान आपत्ति-जनक नहीं है, किन्तु हम लोगो के देश मे मद्य-पान को कोई अच्छा नहीं कहता वह चाहे समाज के जिस वर्ग का व्यक्ति हो। जो जातियाँ प्राचीन प्रथावों के अनुसार मद्य-पान करती आ रही हैं वे भी इस सम्बन्ध की दुर्बलता को अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल नही कह सकती किन्तु पाश्चात्य देशो के सम्पर्क के फलस्वरूप लोगो मे से कुछ नए वर्ग विशेष कर समाज के धनिक वर्गों मे से कुछ लोग आम तौर पर शराव पीने और विशेष रूप से विदेशी शराव के अभ्यस्त हो रहे हैं। यह बात नही है कि प्राचीन काल मे हम लोगो के देश मे मद्य-पान नहीं था। सचमुच प्राचीन ग्रन्थो मे ऐसे लोंगो के उदाहरण मिल सकते हैं जो मादक चीजो का सेवन करते थे। भगवद्‌गीता के एक श्लोक से यह बात स्पष्ट है, जिसमे शुक्राचार्य ने सब तरह के मद्यो का निषेध किया है। उन्होने कहा है कि मद्य-पान करने वाले सभी लोग पाप के भागी हैं।

जादू का भण्डाफोड़

इस देश की आबादी पैतीस करोड़ है, जिसमे हिन्दू चौबीस करोड़ और मुसलमान आठ करोड़ हैं। हिन्दुओ मे चार करोड़ अछूत कहे जाने वाले लोग हैं। जिसमे से ८०–९० प्रति शत तक पुरुष मद्य-पान के

भीषण चक्र में फँसे हुए हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे वर्ग के लोग हैं जो मजदूर पेशा वा चलते-फिरते भिक्षुक हैं जो अपनी आमदनी का अधिकाश मद्य-पान में ही खर्च करते हैं और यह बड़े अफसोस की बात है कि किसानो के उच्च वर्ग में भी कुछ लोग ऐसे हैं जिन्होंने मद्य-पान की लत के कारण अपनी प्रतिष्ठा, समाज मे स्थिति, आचरण और व्यक्तिगत तथा पारिवारिक सुख को नष्ट कर दिया है।

अंग्रेज़ो के इस देश मे आने के बाद मद्य-पान एक सर्व-प्रचलित अवगुण बन गया और उसके व्यवसाय को देश की हुकूमत द्वारा सार्वजनिक रूप से अधिकार-पत्र मिलता है बहुत दिनो से शराब वास्तव में सरकार के राजस्व का मुख्य अधिकार बन गई है। मद्य-पान ऐसे घोषित अवगुण को, जो चोरी और जुए की तरह से एक जुर्म माना गया है, क्रय-विक्रय का अधिकार पत्र देना लज्जा और शोक की बात है। शराब, जो समाज के लिए विध्वन्सक है, का व्यापार चलाने के लिए अधिकार-पत्र दिया जाना सरकार के लिए उससे कम घृणास्पद नहीं है, जितना उसकी ओर से डकैती और चकलेखानो के लिए आश्रय दिया जाना किन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि हम लोगो के शासको की दृष्टि में न तो मद्य-पान को और न जुए को ही उस रूप मे और उस हद तक घृणित माना जाता है जितना हम लोगो के देश में प्राचीन परम्परा के अनुसार माना जाता था।

हिन्दुओं की ही भांति मुस्लिम समाज मे भी धर्म-संथापको और आचार्यों ने स्पष्ट रूप में मद्य-पान और इस अवगुण के विरुद्ध उपदेश दिया है। यह दुख की बात है कि मुस्लिम समाज में भी हिन्दू समाज की भांति मद्य-पान का बहुत अधिक प्रवेश हो गया है और जो लोग समाज के हित-चिंतक हों उनका यह कर्तव्य है कि इस भीषण अवगुण को उखाड़ फेकने के लिए अपने ऊपर अनवरत अथक परिश्रम करने का भार धर्म के नैतिक नियम से ही न समझें बल्कि कांग्रेस की भी

आज्ञा समझे ।

सत्रह करोड़ का राजस्व

ब्रिटिश भारत मे केवल इस घृणित व्यापार के राजस्व से सरकार को कुल १७ करोड़ रुपए की आमदनी होती है, मद्रास सरकार के कुल राजस्व १६ करोड़ का चौथाई आबकारी से प्राप्त होता है। क्या यह बड़े दुर्भाग्य की बात नही है कि जहा मद्य पान मे फसे हुए निर्धन व्यक्ति उसके कारण भूखो मर रहे हो वहा गरीबो के खून से प्राप्त इस राजस्व की सहायता से शिक्षा प्राप्त कर धनिक वर्ग हँसी-खुशी मना रहे हो ? क्या यह एक को लूट कर दूसरे को देने तथा गिद्ध को खिलाने के लिए कौवे मारने का उदाहरण नही है।

जीवन के कला और शिल्प मे प्रवीण सम्पूर्ण परिवार मद्यपान के प्रभाव के कारण अपने कौशल और कार्य-शक्ति से रहित हो गए हैं। मद्यपान के बढते हुए प्रभाव के कारण मद्य पीने वाले की कार्य-कुशलता कम होती जाती है उनका स्वयम् रक्त पतित हो जाता है और उसमे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यह बात सबको मालूम है कि मद्य पीने वालो मे रोग का निरोध कर सकने की शक्ति कितनी कम होती है और उनके वे विनाशक प्रभावो के तुरन्त शिकार हो जाते हैं। मद्य-पान से निर्णय शक्ति कम हो जाती है और शराबी उन प्रलोभनों मे बड़ी जल्दी पड़ जाते हैं जो उन्हे अनेक तरह के जुल्मो मे खीच ले जाते हैं।

मद्य-पान का अवरोध करने से मज़दूर-पेशा लोगो की गरीबी तुरन्त ही आधी कम की जा सकती है उनके स्वास्थ्य और सस्कार की उन्नति हो सकती है। देश मे जुर्म तो कम होगा ही उनकी जाँच-पड़ताल और रुकावट के लिए सरकार को जो खर्च करना पड़ता है वह भी कम हो जायगा। धन की बचत होगी और उसके बदले

व्यापार बढ़ेगा। उत्पादन अधिक होगा और राष्ट्र की रचनात्मक शक्ति बढ़ेगी।

पिछले कई वर्षों से कांग्रेस की ओर से लोग मद्य-निषेध के आन्दोलन का प्रचार करते आए हैं। कांग्रेस मंत्रिमंडलों के भिन्न-भिन्न प्रांतो में बनने पर इस आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया गया था। प्रांत के सब जिलों में एक साथ ही मद्य-निषेध कर देने से प्रांतों की बहुत बड़ी आय एकबएक रुक जाती और प्रांत के प्रबन्ध के लिए तुरन्त व्यय जुटा सकना कठिन होता, इस कारण पहले कुछ जिलों मे शराब-बन्दी प्रारम्भ की गई थी। अन्य सब मद्दो में जहां तक सम्भव होता खर्च की कमी कर पूरे प्रांत भर मे शराब-बन्दी के घाटे को पूरा कर सकने की व्यवस्था धीरे-धीरे की जा सकती थी। कुछ भी हो, हमारा कर्तव्य देश भर मे मद्य-निषेध के पक्ष मे आन्दोलन करने का होना चाहिए जिससे नैतिक क्षेत्र में देश मे सुधार हो सके।

बंगाल का मामला

जब प्रांतीय सरकारो ने मद्य-निषेध का कार्य-क्रम अपने हाथ मे लिया था तो इस सुधार की बुद्धिमानी मे सन्देह रखने वाले बहुत से लोग कठिनाइयाँ और आपत्तियाँ बतलाते थे। वे निर्मूल सिद्ध हो सकती थीं। एक आपत्ति यह की जाती थी कि जब लोगो को खुले आम शराब न पीने दिया जायगा तब ग़ैरकानूनी तौर पर शराब चुवाया जाना अवश्य ही बढ़ जायगा, किन्तु यह बात ठीक नहीं है क्योंकि वास्तविक भेद इस बात से पड़ सकता है कि सुधार का कार्य-क्रम किनकी तरफ से हाथ मे लिया जा रहा है। बंगाल मे जहां सरकार शराब के पक्ष मे नहीं है या कहा जाता है कि अन्य बड़े प्रांतो की तरह से मद्यपान से प्रांत राजस्व कुल राजस्व का चतुर्थांश या पंचमांश नहीं है। निस्सन्देह बंगाल एक बहुत बड़ा प्रांत है और भारत के अन्य

महात्मा गाँधी का समाजवाद

अध्याय १

समाजवाद का कार्य-क्षेत्र और दृष्टिकोण

समाजवाद वह वाद है जो वर्तमान सामाजिक अवस्था मे परिवर्तन करना चाहता है। यह एक सुधार आन्दोलन की तरह प्रारम्भ हुआ जो समाज की बुनियाद को बढ़ाना और राज का कार्य-क्षेत्र विस्तृत करने का प्रयत्न करता है। अभी हाल तक राज वहा प्रारम्भ होता था जहाँ समाज और उसका प्रभाव समाप्त होता था। समाज का काम अधिकतया अपने सदस्यो को भोजन और वस्त्र, और जिन्हें भोजन और वस्त्र की प्राप्ति निश्चित रूप से हो उन्हे अवकाश और मनोविनोद की प्राप्ति कराना था। धीरे-धीरे राज पर सब की जिम्मे-दारी डाली जा रही है। अभी हाल तक राज का काम सिर्फ कर वसूल करना और कानून और व्यवस्था की रक्षा करना था। अब इसे बेकारी भी दूर करनी पड़ रही है। कोई सगठित संस्था अपने अंगो की पुकार पर हक़ की बुनियाद पर कोई बात मानने के लिये तैयार हो जाती है, उसे नीचे के आन्दोलन की बात छोड़कर भी वही बात कर्तव्य की भाँति पूरा करने के लिए विवश होना पड़ता है। इसका मतलब यह है कि किसी आन्दोलन के अत्यावश्यक और प्रभावशाली मुख्य सत्य, जो एक हलचल और अशान्ति की तरह उत्पन्न हुए होते हैं, एक मत, दृढ़ सिद्धान्त का रूप धारण कर लेते हैं जो उस संगठन के कार्यों का नियंत्रण करता है। इस प्रकार आज जिस रूप में राज

प्रातों की अपेक्षा उसकी जन-सख्या अधिक है। फिर भी वास्तविक बात यह है कि वहा शराब से प्राप्त राजस्व बहुत कम है। इसका कारण यह है कि बगाल की सरकार मद्यपान को सदा निरुत्साहित करती रही है और बंगाल की देहाती जनता मे मादक द्रव्यों की परहेज़ी का स्वभाव सर्वत्र होने से मद्यपान का राजस्व बहुत कम, —बिहार मद्रास और बगाल की अपेक्षा बहुत ही अधिक घटा हुआ है। यथार्थ मे बंगाल मे ताड़ के पेड़ों से निकली हुई सब ताड़ी गुड़ बनाने के काम मे आती है।

कारणों की छान-बीन

इस सम्बन्ध मे गरीब लोगो मे प्रचलित मद्यपान के सम्बन्ध मे कुछ आकड़ो का अध्ययन करना मनोरजक होगा। कुछ आकड़े जो न्यूयार्क के अस्पताल के कुछ रोगियो से तैयार किए गए हैं, यह बात प्रकट करते हैं कि वे रोगी अनेक कारणो से शराब पीने की ओर झुके, सामाजिक कारणों से ५२ ५ प्रतिशत मद्य पान मे लिप्त हुए १३ प्रतिशत घरेलू झगड़ों के कारण, ९ ३ प्रतिशत इलाज के लिए, ७ प्रतिशत पेशे के कारण, ७ प्रतिशत बड़ो द्वारा बहकाए जाकर, ५ प्रतिशत बेकारी के कारण, १ २ प्रतिशत खेल मे लगे होने के कारण, और ५ प्रतिशत लोग यह नही बता सके कि उनमे शराब पीने की लत किस प्रकार आई।

विनाश का चक्र

अब मद्य-पान के सामाजिक दुष्परिणाम को लीजिए, तलाक अधिकतया घरेलू झगड़ों के कारण होते हैं जो मद्य-पान के कारण उठते हैं। यह कहा जाता है कि अमेरिका मे १८८७, १९०६ सालों के बीच एक लाख चौरासी हजार शादियों का अन्त तलाक रूप मे हुआ, इनमे ४५ प्रतिशत मद्य-पान के कारण हुई थी, शहरों मे हम प्रायः

चकलों की बात सुनते हैं, और इन चकलों में जुटने वाली ८० प्रति-शत स्त्रिया मद्य-पान के प्रभाव के कारण ऐसा करती हैं। हमारे ही देश मे पश्चिमोत्तर सीमा-प्रात मे मद्य-पान का औसत खर्च प्रति व्यक्ति कहा जाता है कि तीन आना आठ पाई है, बम्बई मे दो रुपया है, तथा अन्य प्रातो में यह रकम इन दो रकमों के बीच ही कम ज्यादा है।

कार्य करने की शक्ति पर मद्य-पान की प्रतिक्रिया पर विचार कीजिए, शराब के प्रभाव के कारण निशाने-बाज हाथ के कापने के कारण निशाना लगाने में चूकता है, छापेखाने का कम्पोजिटर अपनी अंगुलिया अस्थिर अनुभव करता है, और खेल के मैदान मे खिलाड़ी यह अनुभव करता है कि उसके अंग लगभग कमजोर हो गए हैं, आदमी सप्ताह भर काम करते हैं। और एतवार को छुट्टी पाते हैं। उस दिन वह खूब शराब पीते हैं। सोमवार को वह काम करने के अयोग्य होते हैं। चिकित्सा-शास्त्र का विद्यार्थी होने के नाते हमने प्रायः देखा था कि अस्पताल मे सोमवार के दिन डाक्टर पर बहुत कम विश्वास किया जा सकता है, जो आदमी शनिवार के दिन ८० प्रतिशत ठीक निशाना मार सकता है वही सोमवार के दिन केवल ७० प्रतिशत निशाना मार सकता है, जो कम्पोजिटर शनिवार के दिन ८ स्टिक कम्पोजिंग कर सकता है वह सोमवार के दिन केवल ६ ही स्टिक कम्पोजिंग कर सकता है, जो व्यक्ति लम्बी कुदान में शनिवार के दिन १० फीट तक कूद सकता है, वह सोमवार के दिन केवल ८ या ९ फीट ही कूद सकता है, आश्चर्य की बात यह है कि सोमवार से मंगल तक तथा मंगल से बुद्ध तथा बृहस्पति तक इन सब लोगों की कार्य शक्ति धीरे-धीरे बढ़ती रहती है, और बृहस्पति के शाम तक वे अपनी सामान्य कार्य-शक्ति व सफलता तक पहुँच जाते हैं। शुक्रवार के दिन वे पूर्ण रहते हैं, शनिवार के दिन भी वे वैसे ही रहते हैं। किन्तु फिर रविवार

मद्य-पान का दिन आता है, और सोमवार से एक क्षीणता प्रारम्भ होती है।

इस प्रकार विनाश का चक्र तेजी से चलता रहता है, जब तक कि अन्त मे कल इतनी अधिक टूट नही जाती कि फिर उसका उद्धार न हो सकता हो, मद्य-पान के विरुद्ध बात को अनेक रूप से समझाया जा सकता है।

नैतिक रूप से विचार करने पर यह ईश्वर के विरुद्ध एक पाप है। सामाजिक रूप से विचार करने पर यह सभ्यता के ऊपर यह एक धब्बा है, दैहिक रूप से विचार करने पर यह हम लोगो के दैनिक कार्यों के करने मे एक बाधा है, आश्चर्य की बात यही है कि यह सभ्य सरकार इतने समयों तक राजस्व के इस साधन को परिश्रम पूर्वक सचालित रखती आई है।

जब मद्य पान का निषेध कर दिया जाता है तो सरकार को दी जाने वाली मद्रास प्रान्त की ही रकम चार चरोड़ बचा सकने मे ही जनता समर्थ नही होती है, वल्कि उनका कुल सत्रह करोड़ रुपया बचता है जो मद्रास प्रान्त मे खपत होने वाली खुद शराब की ही खपत है। इस प्रकार केवल मद्रास के ही सब जिलो मे शराब-बन्दी जारी हो जाय तो लोगो को कुल २१ करोड़ रुपए की बचत हो जाय, इस तरह सरकार को राजस्व देने वालों की शक्ति इतनी बढ़ जाय और खुद सरकार के भी बहुत कुछ खर्चे की कमी हो जाय, लोग जो इस प्रकार सम्पन्न हो चुके रहेगे सरकार और समाज की अनेक रूप से सहायता करेंगे, और शराबबन्दी का आन्दोलन सफल होने पर सब ओर सुख और सम्वृद्धि का नया युग स्थापित हो गया रहेगा।

—:०:—

अध्याय १४

अस्पृश्यता-निवारण के लिये ऐतिहासिक अनशन

अस्पृश्यता-निवारण कोई नया विचार नहीं है, राजनैतिक कार्य-क्रम के रचनात्मक कार्यों के तीन मुख्य विभागो में एक इसको माना जाना नई बात है, गाँधी जी के रचनात्कम सुधार का कोई भी विषय हाथ की कताई के पुनरुद्धार को छोड़कर नयी खोज नहीं है, किन्तु यह आर्थिक सामाजिक और नैतिक बातो का समुच्चय है, जिससे यह कार्य-क्रम कुछ समय की खोज समझा जाता है, देश भर मे तूफानी दौरों में गाँधी जी के पास पीड़ित लोगों को सहायता पहुँचाने के लिए लोग पहुँचते रहे हैं। और भिन्न २ लोगो की मुसीबते भिन्न २ प्रकार की पाई गई, एक स्थान पर वेश्याओं ने उनकी सहायता चाही और दूसरे स्थान पर अछूतो ने, एक स्थान पर शराबी और ऐय्याश लोगो के असहाय परिवार सहायता माँगने आए और दूसरे स्थान पर निर्धन परि-वारो के भूखे मरते हुए बच्चे हाथ पसारे आए। दाएं, बाएं, आगे, पीछे सब ओर विपत्तियो के दृश्य ने उन्हे निराशा मे न डाला और न जगल में तपश्चर्या करने वा निष्क्रिय योग मे लीन होने के लिए उन्हें प्रवृत्त किया, किन्तु महात्मा जी जिस प्रकार के मनुष्य है, रग २ मनुष्य हैं, उन्होने वेश्याओ और अछूतों, भूखे मरनेवालो, शराबियों, और ऐय्याशों को त्राण देने के मार्ग निकालने के लिए सोचना प्रारम्भ किया, उनके विचारो और अनुभवों से अनेक प्रकार के निवारक साधन और एक सूत्र मे विकास का जन्म हुआ है, जिसको देश ने सर्वाङ्गीण रचनात्मक कार्य-क्रम रूप में स्वीकार कर लिया है अस्पृश्यता-निवारण की उत्पत्ति इस प्रकार हुई।

पृष्ठ भूमि

लगभग एक शताब्दी पहले राजा राममोहन राय ने इस क्षेत्र में प्रयत्न किया, और उन्होने जो झडा उठाया उसे उनके उत्तराधिकारियो ने आकाश मे उड़ते ही रक्खा, विशेष कर उन लोगों ने जो ब्रह्म समाज के सचालक रहे हैं। कोड़ियो ऐसे दृष्टान्त हैं, जिसमे हरिजन बालिकाओं का उद्धार किया गया है। और हरिजन बालकों का पालन-पोषण किया गया है, ये दोनो ही ईमानदार नागरिक रूप से वयस्क हुए हैं। और सुखी तथा सुन्दर जीवन व्यतीत किया है, कोई भी बड़ा आन्दोलन पृष्ठ के बिना अकस्मात उठ खडा नही होगा और भारत मे एक शताब्दी पहले जब तब और जहाँ-तहाँ हुए, इन स्फुट उदाहरणों ने सामाजिक धार्मिक सुधार के एक कार्य-क्रम मे कुछ योग दिया है, जिसे रामानुज ऐसे महात्माओ ने जन्म दिया था, यह सब बाते आधुनिक पीढ़ी की कीमती विरासत हैं। और गान्धी जी ऐसे नेता के लिए स्फूर्त्ति हैं, जिन्होंने एक सामाजिक राजनैतिक कार्य-क्रम को जन्म दिया है, जिसमे अछूत कहे जाने वाले वर्गों—जिनको उन्होंने हरिजन नाम दिया है, के सामाजिक और आर्थिक सुधार का महत्व-पूर्ण स्थान है।

सारे देश मे एक उल्लेखनीय लहर प्रवाहित हो गई है, और यथार्थ मे महत्व की बात केवल सफलताओ की सूची नही है, बल्कि उस भावना की है, जो काग्रेस के नए कार्य-क्रम के परिणाम-स्वरूप हिमालय से लेकर कुमारी अन्तरीप तक सम्पूर्ण देश मे व्याप्त हो गई है, सहायता की भावना तथा अवर्णों के प्रति सवर्णों द्वारा अपने कर्तव्य की स्वीकृति ने अपना विस्तृत कार्य-क्षेत्र बना लिया है, हाई स्कूल के विद्यार्थियो के लिये छात्र-वृत्ति, उद्यम की शिक्षा देने वाली सस्थाएँ, जैसे जूता बनाना, सिलाई, चमड़ा कमाना, बढईगिरी, बुनाई, होम्योपैथिक, आयुर्वेद, चटाई बुनना, छापने का काम, ताड़ के काम, टीन

साजी, कसेरे (बर्त्तन जोड़ने) का काम, बाल पाठशाला, विद्यार्थियों के लिए छात्रावास, चिकित्सा के केन्द्र और हरिजनो के लिए चिकित्सा-शास्त्र की परीक्षाएँ, और उनके लिए नए कुएं खुदवाना, कारखाने, व्यापारिक गद्दियो और दूकानो तथा सवर्ण हिन्दुओ के घरो मे हरिजनो को नौकरी देना तथा उन्हे अखबार बेचने वाले आदमियो का काम देना और उन्हें सवर्णों के लिए धोबी और नाई का काम करने की शिक्षा देना, हरिजन कामो में बैल भेजवाना, हरिजन मजदूरो, उनकी मजदूरी की वृद्धि तथा उनकी बस्तियो मे पुस्तकालय अखाड़ा तथा सामाजिक संघो की स्थापना, हरिजन बच्चो मे कपड़े बटवाना, तथा वयस्क हरिजनो मे कम्बल बटवाना-ये सब कुछ देश-भक्ति और वास्तविक सेवा के कार्य हैं जो गान्धी जी द्वारा स्थापित हरिजनो मे भारी संगठन द्वारा किए जा रहे हैं।

इसके बाद कुछ प्राचीन प्रतिबन्ध हैं जिनके आधीन हरिजन पड़े हुए हैं। उदाहरणार्थ—गढ़वाले जिले में हरिजनो की बारात में डोली और पालकी ले चलने की मनाही है, इलाहाबाद के हाई कोर्ट से उनके इस अधिकार के पक्ष मे निर्णय किया गया है, मध्य देश मे भंगियो को लारी हाकने वाले अपनी लारियो मे नहीं बैठाते किन्तु शाजापुर के भंगियो ने यह अधिकार प्राप्त कर लिया है यह सब कुछ कैसे हुआ है:—समाज सुधारको के जहाँ-तहाँ के दृष्टान्तो द्वारा वा अर्थ-शास्त्र के आग्रहो द्वारा वा धर्म संस्थापको के उपदेशो द्वारा नहीं हुआ बल्कि एक नेता के ऐतिहासिक अनशन द्वारा सारे देश मे व्याप्त प्रबल शक्ति द्वारा हुआ जिसने अपने जीवन को नगण्य समझा और बीस करोड़ भाइयों से चार करोड़ हरिजनो के पृथक हो जाने को रोकने के लिए आमरण अनशन करने का निश्चय किया।

ऐतिहासिक अनशन

जब आज के राजनैतिक क्षेत्र मे जगमगाते हुए पुरुष अपना कार्य

कर चुके रहेगे और लुप्त हो चुके रहेगे तथा जब कि आज की राजनीतिक कल के इतिहास रूप मे स्थापित हो रहेगी और भारतीय जनसख्या के पचमाश के एक लुप्त वर्ग माने जाने का विचार तक भूतकाल की विस्मृत परम्परा बन गया रहेगा तब २० सितम्बर का महात्मा जी का अनशन भविष्य मे शताब्दियों तक बाद मे आने वाली पीढियो की स्मृति मे एक ऐतिहासिक घटना बना रहेगा जिसने राष्ट्रीय पुनरुत्थान के लिए भारतीय आन्दोलन के पूर्ण रूप को ही परिवर्तित कर दिया। यह अनशन एक सामाजिक बुराई के राजनैतिक शोषण के विरुद्ध किया गया था जिसके लिए अल्प मत और बहुमत कही जाने वाली जनता के बीच एक स्थायी दीवाल खड़ी कर उन्हे पृथक २ कर देने का प्रयत्न किया गया था जिन्हे भगवान ने यथार्थ मे विशाल हिन्दू जाति में सयुक्त कर दिया है हरिजनो को एक राजनैतिक दल मे प्रथक २ करना "भेद डाल कर शासन करने" की नीति के प्रयोग का स्वाभाविक मार्ग था जिसने पहले मुसलमानों को हिन्दुओ से अलग किया। बाद मे सिक्खों को, उसके बाद हरिजनो को, इस राजनीतिक धूर्तता के काम ने महात्मा जी को पूरा हिला दिया जो हरिजनो को एक पृथक रूप मे किए जाना कभी भी स्वीकार नही कर सकते थे। क्यो कि उन्होंने कहा था कि "सिक्ख इस रूप मे अनन्त काल तक रह सकते हैं। उसी प्रकार मुसलमान भी चिरस्थायी रूप से रह सकते हैं। मैं अस्पृश्यता के रहने की अपेक्षा हिन्दुत्व के लोप हो जाने को सहन कर सकता हूँ" दूसरे स्थान पर द्वितीय गोल मेज सभा के प्रसिद्ध भाषण मे उन्होंने कहा था "मै भारत की स्वतत्रता प्राप्त करने के लिए भी अछूतों के मुख्य स्वार्थ को नहीं छोड़ सकता।"

महात्मा जी का अनशन व्रत उसके उद्देश्य, हिन्दू समाज तथा स्वयम् मानव प्रकृति मे तथा सरकारी हल्कों मे पूर्ण विश्वास रख कर किया गया था जो उपवास उत्पत्ति मे इतन निर्मल, अभिप्राय मे इतना

सर्वाङ्गीण और लक्ष्य में इतना ऊँचा हो उसका सब प्रकार से विश्वास उत्पन्न कराने वाला अपने पक्ष में मिलाने वाला और विजय प्राप्त करने वाला आवश्यक था अन्यथा हम हरिजन-सेवक-संघ के १९३६ ई० के विशद् विवरण का कारण क्या बता सकते है ? उस साल सभी प्रान्तो में व्यय हुए चार लाख रुपये मे से एक लाख आठ हजार रुपया अकेले मद्रास प्रान्त मे व्यय हुआ था। केन्द्रीय संगठन के आधीन सत्ताईस प्रान्तीय संघ और दो सौ जिला समितिया काम कर रही हैं।

हम सब जगह हरिजनों की सभाए, हरिजनो में धार्मिक शिक्षा, मन्दिरो मे हरिजन भजन मंडलिया, हरिजन संस्कारो में वैदिक अनुष्ठानों हरिजन केन्द्रो के नागरिक निरीक्षणो तथा उद्यम तथा उद्योग सम्बन्धी हरिजनो की संस्थाओ की बात सुनते हैं। देश में एक बिल्कुल नए वातावरण का संचार हो उठा है, हरिजन वर्ग के कल्याण के सम्बन्ध में एक नई उत्सुकता हो उठी है इस विस्तृत और विशाल हरिजन उद्धार के लिए सब से अधिक स्फूर्ति हरिजन आन्दोलन के लिए महात्मा जी द्वारा साबरमती आश्रम दिये जाने से उत्पन्न हुई थी वही एक संस्था थी जिसको महात्मा जी अपना कह सकते थे या लोग उसे महात्मा जी का कह सकते थे किन्तु उसके तोड़ देने पर यह महात्मा जी के लिए बिल्कुल उपयुक्त रूप से कहा जा सकता है, कि "आसमान मे उड़ने वाली चिड़ियो के घोसले होते हैं। और जगल में चरने वाले पशुओ के भी माँदे होती हैं। किन्तु मनुष्य के पुत्र को सचमुच ही स्थान नहीं होता जहाँ वह अपना सिर रक्खे।"

एक नई सभ्यता

काठियावाड़ की अपनी एक यात्रा मे मैं मोरवी राज्य मे गया और एक हरिजन बाड़ा देखा जो दक्षिणी प्रान्तों के ब्राह्मण मन्दिरों के मुकाबिले का था, भाव नगर में मैंने एक भोजनालय और चमड़ा

कमाने का कारखाना देखा। पोर बन्दर मे एक सुन्दर हरिजन सस्था है प्रत्येक स्थान पर लोग अपनी हरिजन संस्थाओं मे यात्रियों को लिवा जाने मे गर्व का अनुभव करते हैं। यह सभ्यता के नए चिन्ह, राष्ट्रीय जागृति के नए लक्षण और राष्ट्रीय पश्चात्ताप के वास्तविक प्रमाण हैं।

समस्या

आज देश के सामने यह समस्या है कि क्या ग्रहण किया जाय और क्या त्याग किया जाय, भविष्य की समस्या केवल समाज-सुधार वा धार्मिक उन्माद नहीं है, अन्ध्र देश के हरिजन खेतो मे काम करने वाले मज़दूर हैं, जो सवर्ण जमींदारो के लिए खेत जोतते, बोते, काटते और खलिहान लगाते हैं उनकी दशा बड़ी दयनीय है। स्पष्ट शब्दो मे कहने पर उन्हें आधा पेट खाकर रहने वाला कहा जायगा आज भी वे दूर रखे जाते हैं और महात्मा जी के हाल मे प्रयुक्त शब्दों के अनुसार उनसे बात-चीत के करने के स्थान पर उनके विषय मे ही अधिक बात-चीत की जाती है। बात की जगह उन्हे गाली ही सुनाई जाती है। वे अब भी अछूत ही समझे जाते हैं सिर्फ गर्दन दबाने और पीटने के समय ही उनका स्पर्श किया जाता है। उनके पास अधिकतया जमीन नही है और सुधार की पहिली योजना इन हरिजनो के समूहो की सहयोग के आधार पर जमीन देने की होनी चाहिए ताकि वे सहयोग समिति से पट्टे पर जमीन ले सके। जमीन का असली मालिक सहयोग समिति होनी चाहिए जिससे वे जमीन को साहूकार के हाथ मे न जाने दे।

ऐसी योजना हम लोगो ने १९२१ ई० मे कृष्णा जिले मे बनाई थी किन्तु मद्रास सरकार के उस वक्त के मन्त्रि मडल ने इसका विध्वस कर दिया। जो जमीन पहले के वर्षो मे अछूतों को दी गई थी उसमे से अधिकाश उनके हाथ से निकल गई है और सरकार इसमे कुछ दिल-

चस्पी नही रखती रही है। आज भारत मे खेती करने वाली जमीन प्रति व्यक्ति आधे एकड़ हैं, और उनमे पैदा की हुई उपज लोगो की आवश्यकता के लिए काफी नहीं है। हरिजन किसानो को गावों में वास्तव मे गुलामी मे दिन बिताते कहा जा सकता है जहा जरायम पेशा कानून लागू है उन जगहो को छोड़कर दूसरी जगहो में सिर्फ उनके शारीरिक हरकत पर कोई प्रतिबन्ध नही है। यह बात नहीं है कि अपने मालिको की नौकरी मे खुश रहने वाले लोग नहीं हैं बल्कि जब कोई चारा नहीं होता तो अत्याचार की सहन शक्ति अनिवार्य हो जाती है। बस्ती के बहुत बढ जाने पर भी यह अभागे लोग शताब्दियो से रहने की थोड़ी जगहो मे ही रहते आ रहे हैं इसलिए गाव की बस्ती फैलाई जानी चाहिए। उसमें और जमीन मिलाई जानी चाहिए और जहाँ सम्भव हो सवर्णों के बीच में हरिजनो के रहने की सुविधा उत्पन्न की जानी चाहिए। पृथक घर उसी प्रकार बुरे हैं जैसे पृथक स्कूल, छात्रावास, तालाब, और कुएँ वा निर्वाचनाधिकार। वे वास्तव मे अस्पृश्यता को प्रोत्साहित करते हैं और उसे समाज के स्थायी रूप की भाति स्थिर बनाते हैं। इन लोगो द्वारा आर्थिक अवनति जैसी अनुभव की जाती है वह वर्णनातीत है। उनकी स्थिति में यह आदर्श वाक्य अन्य सभो की अपेक्षा अधिक लागू है "संसार के श्रम-जीवियो, मिल जाओ क्योकि तुम्हारे पास खोने के लिए ज़ंजीर छोड़ कर और कुछ भी नहीं है" एक गाव का हरिजन संसार में क्या चीज खो सकता है वास्तव मे कुछ भी नहीं इसलिए जब कभी उसके पेट में आग लगती है वह डाका डालने वा अन्तिम साधन रूप मे बगावत मे भाग लेने मे हिचकिचाहट नहीं करता।

एक राष्ट्रीय अन्याय का सुधार

अतएव हम लोगों का कर्तव्य हरिजनो को छूने से समाप्त नहीं हो

स्थित है उसमे सामाजिक व्यवस्था की विषमताए, और अन्याय दूर करने के लिए अनाथालयो, कुष्ट-आश्रमो, असहाय अबलाश्रमो की स्थापना, वृद्धावस्था मे सहायतार्थ पेंशन की व्यवस्था, अस्पताल और निश्शुल्क पाठशालाओ का निर्माण, बीमारी, अशक्तता और दुर्घटनाओ के बीमे, बच्चा उत्पन्न होने पर माताओं की विशेष रूप से सहायता तथा निर्वाह योग्य मजदूरी दी जाने का जिम्मा लेने की व्यवस्था की जाती है। किन्तु यह सब दीवारो को सहारा देने वाली थूनी की तरह ही हैं जिनका निर्माण धनी और सम्पन्न लोग अपने सुचारु रूप से बने किन्तु तेजी से ढहते जाने वाले किलो की रक्षा करने के लिए किया है। ये कृपा-भाव दिखाने की भावना से किये हुए धर्मार्थ के काम हैं। किन्तु इन जमीदारो का धन गरीब किसान की मिहनत से पैदा होता है। व्यापारी की सम्पत्ति भूखो मरते हुये श्रमिक के उद्यम से जुटती है, महासागरो मे अपनी जान को खतरे मे डालने वाले खलासियो की मिहनत से ही जहाज का मालिक धनवान और अमीर बनता है। कारखानो मे रात-दिन मरता हुआ शिल्पकार ही व्यवसायी को वणिकसम्राट बनाता है। इस प्रकार जमीदार, जहाजी व्यापारी सेठ साहूकार और वणिकसम्राट उन लोगो द्वारा ही बनाए जाते हैं जो दिन भर मेहनत मजदूरी कर अपना पसीना बहाते है और कुत्तो की तरह जिन्दगी बिताते हैं। इस पर समाजवादी स्वभावतया ही प्रश्न करता है कि यह हालत कितने दिनो तक बनी रहेगी? गरीब धनी के दिए सहायतार्थ टुकडो पर कब तक गुजारा करता रहेगा? श्रमिक कब तक अभागी जिन्दगी बिताता रहेगा जिसके न तो रहने का एक टूटा छप्पर तक हो, न रोज एक बार नहाने धोने तक का सुभीता।

ये उचित प्रश्न है, किन्तु यह जब भारत मे उठाए जाते हैं तो यद्यपि उनमे अटल जोर सा होता है तथापि उनमे एक निश्चित वास्तविकता नही होती। भारत मे हम पश्चिम की नक़ल करते हैं, हम उसकी

जाता। इसलिए हमें एक पग और आगे बढना चाहिए और उन्हें एक परिवार के रूप मे ग्रहण करना चाहिए तथा उनकी आर्थिक स्थिति का सुधार करने का उपाय करना चाहिए। उनको अपने भाई-बहनों की तरह से समझिए और इस महान् राष्ट्रीय सेवा-कार्य मे जुट जाइए। तब भारत की स्वाधीनता अन्य मार्गों की तरह शीघ्र ही प्राप्त होगी। महाराजा ट्रावकोर और लाथी के राजा द्वारा किया गया उनके मन्दिर में प्रवेश कराने का महान सुधार भी आर्थिक क्षेत्र मे उपेक्षा की न्यूनता पूरी नही कर सकता। हरिजन समस्या आत्म-सशोधन और साथ ही साथ सामाजिक सहायता की भावना का एक संयुक्त रूप है। यह इस रूप से बहुमुखी है कि इसके सम्बन्ध की समस्याए उतनी ही आर्थिक हैं जितनी सामाजिक, उतनी ही नैतिक हैं जितनी धार्मिक, इसलिए हमे इस राष्ट्रीय अन्याय का प्रतिकार करना चाहिए और अपने भाइयो को अपने साथ नागरिक उन्नति और राजनीतिक स्वतत्रता के ऊचे दर्जे तक उठाना चाहिए। महात्मा गाधी कहते हैं कि "अस्पृश्यता-निवारण हृदय के परिवर्तन का विषय है हृदय का परिवर्तन धन के व्यय से नहीं होता वह चाहे जितनी चतुरता से किया गया हो परिवर्तन उस समय होगा जब हम लोगो के पास आत्म त्यागी आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाले कार्य-कर्ता होगे। ऐसे व्यक्तियो के होने की ठोस जाच आर्थिक सहायता होगी क्योंकि हृदय के परिवर्तन का एक परिणाम हरिजनो मे अनवरत कार्य होना चाहिए। पर्याप्त धन के बिना यह नही हो सकता। स्कूल और छात्रावास नही खोले जा सकते और न काफी धन के बिना कुवे ही खोदे जा सकते हैं इसलिए मै आशा करता हूँ कि धनी और ग़रीब सभी द्वारा उनकी शक्ति के अनुसार यथेष्ट सहायता सघ को प्राप्त होगी।"—

—:०:—

अध्याय १५

ग्रामीण जीवन में साम्प्रदायिक द्वेष गहरा नहीं है

जन-सम्पर्क कार्य-क्रम स्वागत योग्य आन्दोलन है।

जो बात सबसे आसान मालूम पड़ती है, वही प्रायः पूरा करते समय सबसे कठिन निकल आती है। ऐसी आशा की जा सकती थी कि इस राष्ट्रीय विचारो के युग मे योरप मानव-जगत के लिए एक आदर्श रूप होगा, जहा विरोधी स्वार्थों का एक सामान्य एकता मे सामजस्य होगा, और सभी विरोधी भावनाए शान्ति मे लीन कर दी जायंगी। उस समय शेष संसार को अपनी २ सीमाओ के अन्दर इसी प्रकार की भावना स्थापित करने और संसार भर मे राष्ट्रीयता की भावना स्थापित करने मे कोई कठिनाई न होगी। तथापि आज हम देखते हैं कि हम लोगो का देश अलग २ टुकड़ो मे कर दिया गया है। तथा भूभाग के अनेक टुकड़ों, जाति के अनेक भेदो, और स्वार्थों की अनेक प्रतिस्पर्द्धाओ मे विभाजित कर दिया गया है। इसका कारण यह नहीं है कि वह अनिवार्य हैं बल्कि यह कारण है कि एक विदेशी सरकार—जो अपने निवास-स्थान से छः हजार मील दूर के एक देश पर अधिकार जमाए हुए है—का साम्राज्यवाद की खोज मे अजान रूप से अपनी शक्ति और स्थायित्ज की रक्षा करना आवश्यक है। आप भारत के गावो मे चाहे जहा जाइए वहा आपको दो सम्प्रदायो के अनुयायियो के बीच सामाजिक वा धार्मिक भेद चाहे जो मिले किन्तु आर्थिक स्वार्थों की अभिन्नता तथा मुसलमान और हिन्दू तथा हिन्दुओं मे ही सवर्ण और अवर्ण तथा सवर्णों मे ही ऊंच और नीच

जातियो सरीखे बिलकुल विरोधी सम्प्रदायो वा जातियो मे बन्धुत्त्व की वह भावना और आर्थिक स्वार्थों की अभिन्नता दिखाई पड़ना एक विचित्र दृश्य है जिसे देख कर उन लोगो को आश्चर्य हो सकता है जिन्हे इस प्राचीन देश मे यात्रा के लिए आने वाले योरोपियनों द्वारा बताई यह बात ही अपने गले से उतारने का अवसर मिलता है, कि भारत एक महादेश है जिसमे प्रतिस्पर्द्धी धर्म हैं, विरोधी स्वार्थ हैं और कलह-प्रिय विश्वास है। गावो मे हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से मिलते और परस्पर मित्रता रखते हैं उन्हे इस बात का बिलकुल ध्यान नही होता कि एक की आस्था दूसरे की आस्था से बिलकुल भिन्न है।

धर्म उनमे से सबके लिए व्यक्तिगत चीज है और उसका पालन प्रत्येक आस्था में निहित सिद्धातो पर पूर्ण भक्ति रख कर किया जाता है तथा सामाजिक और आर्थिक मामलो मे ऐक्य का भाव रक्खा जाता है। यही नही, बल्कि लोगो मे स्वार्थों की अभिन्नता की भावना होती है, और लोग यह बात समझते हैं कि बाढ आने पर दोनों जातियो की समान रूप से ही भीषण हानि हो सकती है, तथा तूफ़ान आने पर गाँव के सब लोगों की एक समान ही हानि हो सकती है। जाति, सम्प्रदाय, वा रग का उसमे कोई भेद नही हो सकता, प्रकृति जब इस पृथ्वी पर रहने वाले लोगो पर अपनी उदारता की देन वितरित करती है, वा ससार के राष्ट्रो पर विपत्तिया डालती है वा प्रलय उपस्थित करती हैं जिनमे उसकी उदारता की देन बिखरी रहती है, तो वह किसी प्रकार का भेद नही रखतीं, जब मनुष्य नागरिको के मध्य ऐसी कृत्रिम दीवाल खड़ी करते हो तो यह क्यों कहना चाहिए कि भारत मे आपस मे ही फूट हो।

आपस की फूट

भारत मे दो शताब्दियो तक अग्रेजी शासन के बाद जिस मुख्य

बात से लोग प्रभावित हुए हैं वह यह है कि हम लोगों के राष्ट्र में आपस में ही फूट है। विदेशी शासन के द्वारा कृत्रिम उपायों से इस प्राचीन देश में जो भेद उत्पन्न कर दिये गए हैं उन पर अक्सर लोगों का ध्यान गया है, भारत का क्षेत्रफल में तृतीयांश और जन-संख्या में चतुर्थांश अलग कर देशी राज्यों के रूप में कर दिया गया है, जिनके लिए खूब विज्ञापन किया जाता है कि वे स्वतंत्र इकाइयां हैं, ऐसे भू-भाग हैं जो इंगलैंड के सम्राट द्वारा संधि-पत्रों सनदों और राजीनामों के द्वारा निश्चित संधियों और मित्रता के सूत्र से बँधे हैं। यथार्थ में यह राजा सिर्फ कठ-पुतले हैं जो अपना राज्य ब्रिटेन के सम्राट की मर्जी पर ही पाए हुए हैं।

दूसरी ओर देश ग्यारह प्रान्तों में विभाजित किया गया है और बड़ी धूर्तता से मताधिकार देने और निर्वाचन संगठित करने के इस प्रकार प्रयत्न किए गए हैं जिससे जनता का सच्चा मत फूट न निकले। इस प्रकार देश को भू-भागों में विभाजित करने के बाद भारत को फिर जातियों में विभाजित किया गया है, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, हरिजन, इन सब का अलग निर्वाचन-क्षेत्र बना दिया गया है, और इनमें से हर एक, एक दूसरे के विरुद्ध भिड़ा दिये गए हैं, और प्रत्येक को मंत्रि-मंडल बनाने के समय एक दूसरे के विरुद्ध को अपनी-अपनी मांगें सामने रखने के लिए उत्तेजित किया जाता है, फिर देश को देहाती और शहराती रूप में विभाजित किया गया है, अब यह सब लोगों को मालूम है कि भारत की सरकार देहाती क्षेत्र के हितों की अपेक्षा शहराती क्षेत्रों के हितों का किस प्रकार अधिक संरक्षण करती है, तथा किस प्रकार देहाती हलकों की अपेक्षा शहराती हलकों में टैक्स लगाने की माप नीची और हलकी रक्खी गई है।

कबूतर खाना

अन्ततः देश अप्रत्यक्ष रूप से भी अनेक टुकड़ों में विभाजित कर दिया

१२

गया है, जिन्हे मैदानी और एजेन्सी हलका कहाजाता है, एजेन्सी हलकों मे मुल्की स्वतन्त्रता और मुल्की न्याय के कानून कायदे नहीं वर्त्ते जाते, वहाँ सक्षिप्त रूप का कायदा कानून वरता जाता है, वहाँ पर के लोग कुछ हद तक निरकुश शासन के अधीन हैं, जो शायद एजेन्सी हल्को की अपेक्षा मैदानी हल्कों मे वहुत अधिक क्षीण हो गया है। इनके अतिरिक्त बगीचा लगाने वालों का दल, योरोपियन व्यापारिक स्वार्थों का दल, विश्व-विद्यालय तथा प्रत्येक जाति की स्त्रियों का एक पृथक क्षेत्र निर्वाचन में वना दिया है।

अतएव ये सब भेद भारत को एक प्रकार का कबूतर-खाना वना देते है जहां पर प्रत्येक खाने पर लेविल लगा दी जाती है और टिकट लगा कर वह अलग टुकड़ा वना दिया जाता है, इस तरह पैंतीस करोड़ आदमी छाट २ कर टुकड़ों मे बाटे जाकर खानो मे रख दिए गए हैं, ऐसे खाने जिनमे एक दूसरे मे न हवा आ जा सके, न पानी आ जा सके, और न विचार आ जा सके—और उन्हे यह अनुभव करने के लिए यह उत्साहित किया जाता है कि वे विचार, भावनाओ, और आकाक्षाओ मे एक दूसरे से विल्कुल पृथक हैं।

साम्प्रदायिक चेतना

देश को विभिन्न टुकड़ो मे बाँट देने के सन्बन्ध की यही उत्पत्ति कथा और कार्य-प्रणाली है, और तब हम लोगो से कहा जाता है कि यह देश एक राष्ट्र नही हो सकता क्योकि लोग दो सौ भाषाए वोलते हैं, अनेक धर्मो के अनुयायी है और उनमे हजारो मत मतान्तर हैं। पवित्र रूप से कथित और छल पूर्वक अपने शासको द्वारा प्रचारित इस बयान को हम लोग मानते आए हैं। और हम केवल मौन ही नही रहते आए हैं वल्कि हम इस आन्तरिक भेद की भावना के आधीन अपनी असहाय अवस्था भी अनुभव करते आए हैं। सचमुच ही इन भेदो का उस समय तक देश के राज-

नैतिक जीवन मे कोई भाग नहीं था जब तक धारा-सभाओ में निर्वाचित सदस्यों की सख्या गौण रूप की थी। सन् १८९३ ई० में पहले पहल भारत की प्रातीय और केन्द्रीय दोनों धारा-सभाओ में निर्वाचित सदस्यो के लिए जाने की व्यवस्था हुई। उस समय तक उसमे केवल नामज़द सरकार और गैर सरकारी सदस्य ही होते थे। किन्तु जब १८९३ ई० के निर्वाचित सदस्यों की संख्या (मद्रास मे ७) बढ़ा कर २८ की जाने लगी तो साम्प्रदायिक चेतना जागृत हुई। वास्तव में यह एक मुख्य कारण था जिससे बंगाल को १९०५ ई० मे दो प्रातों में विभाजित किया गया और उस विभाजन से मुस्लिम चेतना पहले-पहल जागृत हुई। उस समय तक अंग्रेजो द्वारा हिन्दुओ को प्रश्रय दिया जाता था किन्तु जब उन्होंने देखा कि भारत मे लाखो हिन्दुओं मे राष्ट्रीय भावना व्याप्त होने लगी है तो प्रगति के पहिए मे रोक लगाना सुरक्षित समझा गया और पूर्वी बंगाल में एक मुसलमानी प्रात की स्थापना की गई। बग-भंग के इस अन्याय का १९११ में सुधार किया गया, किन्तु जातियो के मस्तिष्क मे यह पुष्ट भावना जागृत ही रही। एक बार जो कड़ुआहट पैदा कर दी गई थी वह लोगो के हृदय के क्रोध और प्रतिहिंसा की भावना की शह पाकर बढने लगी और १९०८ में प्रारम्भ होने के बाद से हम हिन्दू मुसलमानो के झगड़ो का दृश्य देखते आ रहे हैं जो भारतीय शासन-प्रणाली के विकास के चित्र को धुधला कर रहे हैं।

एक दुःख-पूर्ण कहानी

फिर भी लोग समय पर ही जाग उठे और इस भूल का सुधार करने के लिए १९०६ मे उपाय किया किन्तु सयुक्त निर्वाचन के स्थान पर १९१६ के लखनऊ के हिन्दू-मुसलिम समझौते मे पृथक निर्वाचन के समझौते को मानना पड़ा जिसकी भावना एक बार जड़ जमा चुकी थी। उस समय

से पृथकता ही सब वार्तालापो का आधार बनती आई है किन्तु जब सन् १९२१ ई० मे खिलाफत आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तो कुछ समय के लिए सभी भेदो को भुला दिया गया यद्यपि खिलाफत के मिटने और खलीफा के अधिकारो को टर्की, खलीफाओं की जन्म-भूमि, द्वारा ही अस्वीकार कर दिए जाने पर एकता की यह भावना एकबारगी ही मिट गई और उसकी जगह परस्पर विद्वेष की गहरी भावना खूब जोर से उठ खड़ी हुई, जो एक प्रबल भावना के भार के नीचे दबा दी गई थी। १९२४ से हिन्दू मुसलमानो के भेद की दुःख पूर्ण कहानी अभी तक चली आ रही है कभी ज़ोरदार झगड़े के रूप मे वह उठ जाती थी और कभी वह प्रतिस्पर्द्धा की दबी हुई भावना के रूप मे रह जाती थी। किन्तु लोग सुगमतया यह बात देख सकने मे समर्थ हुए कि यह प्रतिस्पर्द्धायें, सघर्ष और झगड़े अगरेजी शिक्षित वर्ग द्वारा ही उत्पन्न किए गए थे जो अपनी निजी व्यक्तिगत उन्नति के लिए लड़ रहे थे, न कि पूर्ण जाति के राष्ट्रीय उत्थान के लिए। काग्रेस १९३१ मे ही इस मामले के सत्य को ही सरलतया समझ सकने मे समर्थ हुई। दूसरी गोल मेज़ सभा से महात्मा गाधी ज्यो ही लौटे और कार्यकारिणी समिति के अपने सहयोगियो के सामने उन्होने जो अपना पहला बयान दिया वह यह था कि भारतीय शासन-प्रणाली के सम्बन्ध की उन्नति या भविष्य मे समझौते की बात हिन्दू-मुसलिम एकता पर आधारित होनी चाहिए और यह कि जहाँ वे गोलमेज़ सभा मे अनेक मत-भेदो के लिए तैयार थे वहाँ वे उन दुःख-पूर्ण बातो को नहीं देखना चाहते थे जो उन्होने लन्दन मे एक ओर हिन्दू और मुसलमानो के बीच तथा दूसरी ओर काग्रेस और नरम दल वालों के बीच देखा।

उन्होने कहा कि एक वस्तु का दृश्य उसकी वास्तविकता से बिलकुल भिन्न होता है, और यह कि कड़वाहट की वास्तविकता, द्वेष

और असम्भव भावनाएं जिस रूप में द्वितीय गोलमेज़ सभा मे दिखलाई गई उन्होंने देश की आख खोल कर यह महत्वपूर्ण बात बतला दी कि इस देश मे ऐसे लोग भी हैं जो भविष्य के आगे वर्तमान को दबा सकते हैं तथा साम्प्रदायिक बातों के आगे राष्ट्रीय बातो को तुच्छ समझ सकते हैं और सुविधा-जनक बातो के आगे सिद्धात को धता बता सकते हैं।

जन-सम्पर्क

इसके अनुसार एक नए आन्दोलन का सूत्रपात हुआ है जिससे जनता से काग्रेस का सम्पर्क स्थापित किया जा सके। काग्रेस पहले उच्च वर्ग के आन्दोलन रूप मे स्थापित हुई थी जो निस्सन्देह नीचे के वर्गों और देहाती जनता के प्रति अपने कर्तव्य का पालन इस महान आन्दोलन के जन्म-काल ही से कर रहे थे। किन्तु यह मध्य श्रेणी के लोगों का आन्दोलन हो गया जिसमे कुछ अंग्रेजी शिक्षित लोग सम्मिलित थे और अन्त मे १९२१ ई० में यह जनता का आन्दोलन हो गया। जब से कि महात्मा गाधी का राजनैतिक क्षेत्र मे आगमन हुआ है। फिर भी इसमे कुछ भूले थीं और यह कमी थी कि एक सड़क पर का मामूली आदमी काग्रेस मे राष्ट्रीय महा सभा के अखण्ड बुद्धिमान और मुख्य रूप से सहायक रूप मे ग्रहण नहीं कर लिया जाता था किन्तु जन-सम्पर्क बढ़ाने का कार्य बड़ी तत्परता से किया जा रहा है। जन-सम्पर्क मे हिन्दू और मुसल्मान जनता दोनो सम्मिलित हैं इसलिए उस शब्द मे मुसल्मान जनता के साथ सम्पर्क बढ़ाने की भावना भी निहित है। इस प्रकार हिन्दू-मुसल्मान समझौते का गुरुत्व केन्द्र सुसंस्कृत और अंग्रेजी शिक्षित मुसल्मान जनता से हटकर विशाल निष्कपट मुसल्मान जनता पर चला गया है, जो कस्बों और गावो मे रहती हैं और परिश्रम के क्षेत्र मे अपने हिन्दू भाइयो से मिल-जुल कर रहती है।

यह कुछ अश तक आशा-जनक सिद्ध हुआ है। हम आशा से परे आशा-जनक नहीं कहते, क्योंकि यह आशा बराबर की जाती थी कि देहाती कृषक और उद्योग-धन्धो के जीवन की निचली तह में अधिक गहराई मे हिन्दू मुसल्मानों के बीच विरोध भावना नहीं है। शीघ्र ही हम आशा कर सकते हैं कि मुसल्मान जनता राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिक सम्पर्क मे आएगी और इस सस्था को देश के भिन्न-भिन्न स्वार्थों का वास्तव मे उससे भी बहुत अधिक प्रतिनिधित्व करने वाली बनाएगी जितना कदाचित आज कर रही है। जब वह निकट भविष्य की ही दैवी घड़ी आ पहुॅची रहेगी तब हम अच्छी तरह कह सकेंगे कि भारत अपने पुरुषत्व को पुनः प्राप्त कर चुका रहेगा और अपनी पूर्ण स्वतंत्रता का अधिकार जता सकने मे ऐसे ढङ्ग से समर्थ होगा जो भीख मागने की नीति न होगी, रुक २ कर चालो की न होगी, उन काम में आने वाले सुधारो के कार्य-क्रम द्वारा भी न होगी जिसे इसने रद्द कर देने का निश्चय किया है बल्कि विदेशी शासको को पुकार कर कहेगी कि खड़े हो और माल-मता को उचित मालिकों, हिन्दुओं मुसल्मानों, सिक्खो, पारसियो, ईसाइयो, और हरिजनो के हवाले करो जो एक ही भारतीय नाम से पुकारे जायॅगे।

अध्याय १६

राष्ट्रीय शिक्षा

राष्ट्रीय काग्रेस ने अपने राष्ट्रीय कार्य-क्रम में १९०५ ई० मे ही जिस विषय को महत्वपूर्ण स्थान दिया वह राष्ट्रीय शिक्षा थी जिसका अर्थ "राष्ट्रीय भाग्य-निर्माण की ओर निर्देशित, राष्ट्रीय नियन्त्रण में, राष्ट्रीय ढङ्ग से दी हुई शिक्षा" थी। यह परिभाषा थी जिसे काग्रेस ने कलकत्ता मे १९०६ के काग्रेस अधिवेशन में दादाभाई नौरोजी के सभापतित्व में स्वीकार किया। पूर्वी बंगाल मे हाई स्कूल खुले, पंजाब, बंगाल, महाराष्ट्र और दक्षिणी भारत मे राष्ट्रीय सस्थाए खुलीं। राष्ट्रीय शिक्षा के लिए देश भर मे सस्थाओं का जाल बिछ गया। ये संस्थाएं विश्वविद्यालयों से संबद्ध नहीं थीं और न इन्हें उस समय की सरकार ही मान्य करती थी। इस आन्दोलन के इतिहास में १९०७ तक बीच मे शिथिलता आ गई जब कि एनी बीसेन्ट के अभ्युदय ने इस आन्दोलन मे जान डाला। एक बार फिर सोसाइटी फार दी प्रोमोशन आफ नेशनल एजुकेशन (राष्ट्रीय शिक्षा प्रसार समिति) नाम की एक समिति की ओर से राष्ट्रीय शिक्षा का झंडा ऊंचा किया गया और इस समिति मे बहुत से नवयुवक जुटे। यह आन्दोलन १९१९ में शिथिल हो गया। १९२१ ई० मे असहयोग आन्दोलन के जन्म ने इस आन्दोलन को पुनर्जन्म दिया। तिहरे बहिष्कार आन्दोलन में स्कूल और कालेजों का बहिष्कार भी एक होने के कारण राष्ट्रीय शिक्षा का फिर ज़ोर हुआ।

उस समय से देश मे महान परिवर्तन उपस्थित हुए हैं। प्रान्तो में

भयानक व्याधियो का अनुकरण करते हैं और उसके लिए बेकार दवाओ का इस्तेमाल करते हैं। भारत का हर एक उथल-पथल इंगलैंड में पहले हुए किसी उथल-पथल का पुराना निष्फल अनुकरण मात्र होता है। इंगलैंड में औद्योगिक युग अठारहवी सदी के अन्त में प्रारम्भ हुआ। थोड़े ही समय मे अर्थशास्त्र राजनीति के एक मुख्य अंग के रूप मे विकसित हुआ। जहाँ यह पहले राजनीतिक प्रभाव का स्रोत मात्र था वहा यह राजनीतिक विषय रूप मे बदल गया। इंगलैंड मे इस राजनीतिक आर्थिक उथल-पथल की प्रमुख उल्लेखनीय घटनाए हैं, और एक विचित्र संयोग से हम यह देखते हैं कि उसी के साथ भारत मे भी उनके प्रतिविम्ब रूप में घटनाएं हुई पाई जाती हैं। उन्नीसवी सदी मे इगलैंड में उदार दल वालो अर्थात् बेरोक व्यापार के हिमायती लोगो का जन्म हुआ। इस तरह राजनीतिक शब्द-रचना का सीधे आर्थिक विपय से संबंध हुआ। औद्योगिकता की जब शीघ्र उन्नति हुई तो मध्य श्रेणी के लोगो का प्रभाव बढ़ा और वे मामूली दूकानदार की जगह भारी आढ़तिए बन गए। उन्होने अपना राजनीतिक प्रभाव बढाया, एक राजनीतिक दल स्थापित किया और सन् १८३२ ई० में मताधिकार का काफी अधिक विस्तार कराया। उसी साल भारत के लिए 'चार्टर ऐक्ट आफ इंडिया' कानून पास हुआ जिसके अनुसार इस देश में भारतीयो और योरोपीयों को बराबर अधिकार मिले। सन् १८५७ ई० में इगलैंड के श्रमिक दल ने किसी प्रकार व्यावसायिक केन्द्रों मे मताधिकार की माग पेश की। भारत में १८५७ ई० मे लोगों ने विदेशी शासन का जुआ अपने कंधो से फेकने की कोशिश की और उसमें असफल होने पर उस जुए को पहले से भी भारी बना लिया। दूसरी किश्त की बारी १८८४ ई० में आई जब इंगलैंड के खेतिहार मजदूरों ने नागरिक अधिकार प्राप्त किए। भारत मे १८८५ ई० में भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का जन्म

नया शासन विधान स्थापित होने से कांग्रेस ने नौ प्रान्तों मे मंत्रि-मंडल बना लिया था, जिससे उनके हाथ मे उतनी शक्ति आ गई थी जो कुछ शासन-विधान द्वारा प्रान्तीय सरकारों को मिली थी। उस समय प्रश्न होने लगा था कि अब राष्ट्रीय शिक्षा का अर्थ क्या है, और कांग्रेसी मंत्रियो के होने पर राष्ट्रीय शिक्षा का प्रश्न उठाने का क्या अभिप्राय हो सकता था। बात ठीक थी। किन्तु मंत्रियो का अधिकार सीमित था। मंत्री केवल दफ़्तर मे बैठते थे। उन्हें पूरा अधिकार नहीं था। वास्तविक अधिकार विभागो के प्रधानो के हाथ मे था जो पूरी तरह वा आंशिक रूप से अनुशासन मानने के लिए तैयार नहीं थे, और न उन मनोवेगों तथा स्फूर्तियो मे भाग लेते थे, जिनसे मंत्री अनुप्रेरित हो रहे थे। हम उस समय भी उस घोड़े की तरह घूम रहे थे जो एक गोलाई मे फेरा लगाता हो लेकिन एक कदम भी आगे न जाता हो। मंत्री प्रारम्भ से लेकर स्कूल के अन्त तक मातृ-भाषा द्वारा शिक्षण की व्यवस्था करने मे समर्थ न हो सके, परीक्षाओ के लिए चाह उतनी ही बनी रही। केवल किताबी शिक्षा की उत्कंठा पहले की ही तरह बनी रही जो हमे कही भी नही पहुँचाती, और युवको को केवल बेकारी के लिए प्रमाण-पत्र देती है, और जो उस पवित्र विश्वास के साथ प्राप्त की जा रही है जिसका उपयोग किसी ऊंचे उद्देश्य के लिए होना चाहिए, और इसी शिक्षा के पीछे अध्यापक, शिष्य, तथा माता-पिता मतवाले हो रहे हैं।

जान बूझ कर बहुत खर्च कर बेकारी उत्पन्न कर हम ज़ोर शोर से शोर मचाते हैं कि देश बेकारी से तबाह हो रहा है। नवयुवक के हृदय का आकर्षण आज विश्व-विद्यालयो की शिक्षा की ओर है जो उद्योग-धंधा, शिल्प वा व्यापार की तरफ होना चाहिए जिससे वे प्रतिष्ठा-पूर्वक जीवन-निर्वाह कर सके। किन्तु फिर प्रश्न उठता है कि कौन से उद्योग, पेशे वा व्यापार के लिए बच्चो को तैयार किया जाय।

अंततः देश के युवकों के लिये राष्ट्रीय शिक्षा की यही समस्या है जिस प्रकार देश के नागरिकों के लिये राष्ट्रोद्धार की समस्या है। जब तक पूर्ण स्वतन्त्रता न प्राप्त हो, तब तक राष्ट्रीय समृद्धि के लिए आवश्यक व्यापारिक, औद्योगिक और शिल्प विज्ञान संबंधी विशेष सुविधाओ के उपयोग का पूर्ण क्षेत्र नहीं मिल सकता दूसरे शब्दों मे जब तक देश औद्योगिक और व्यापारिक संरक्षणो के बिना पूर्ण स्वशासित नहीं हो जाता, जब तक भारत मे पूर्ण स्वराज्य नहीं स्थापित हो जाता तब तक भारत की सम्पत्ति के संचय और देश के कल्याण की वृद्धि की समस्याएं जो राष्ट्रीय शिक्षा के लक्ष्य हैं, लाभप्रद रूप मे सब रूपो में सुलझाई नहीं जा सकतीं।

फिर भी हमारे उद्योग एक साथ ही ऐसे होने चाहिए जिसमें एक ओर विदेशी शासन के जुए से देश का उद्धार करने का प्रयत्न किया जाय और दूसरी ओर विदेशी व्यापार और विदेशी उद्योग-धंधे के बंधन को काटा जाय। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए हमे अपने युवकों के हृदय मे ऐसी संस्कृति की उत्कंठा उत्पन्न करनी चाहिये जो देशी हो तथा ऐसी कला और शिल्प का प्रेम उत्पन्न करना चाहिये जो देश के वैभव की वृद्धि करने मे सहायक हो। यही राष्ट्रीय शिक्षा की समस्या की कुन्जी है। भारत के ब्रिटेन द्वारा आधिपत्य मे वास्तविक बखेड़ा यही है जो केवल राजनीतिक ही नहीं है बल्कि व्यापारिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक है। यह अंग्रेज़ों के लाभ की बात थी कि नवयुवक हृदय को अपने नमूने के साचे मे ढाला और ब्रिटिश-पक्षपाती ढंग के नमूने तैयार किये।

इस दृष्टि से देश के युवकों को अंग्रेजी की शिक्षा, अंग्रेजी उपाधि पत्र, प्रशंसापत्र, पदवी, उच्च पद, और पेंशनों में खुश रहना सिखाया गया है। उन्हें अंग्रेजी भाषा मे ही बात-चीत करने, घर पर अंग्रेजी में ही चिट्ठी लिखने और विवाह का निमंत्रण-पत्र भी अंग्रेजी मे भेजने

मे प्रसन्नता का अनुभव करना भी सिखाया गया है। विजेताओं की भाषा की इस चाह ने—वह भाषा जो कालेजों और धारा-सभाओं में प्रयुक्त होती है, तथा जिस भाषा मे सभी सरकारी नियमों, उप-नियमों और अस्थायी नियमों के आज्ञा-पत्र निकलते हैं तथा एक दूसरे से बात-चीत भी अग्रेजी मे ही करने के प्रचड उत्साह ने सभी श्रेणी और वर्ग के लोगो पर अपना अधिकार जमा लिया है और वह सस्कृति का चिन्ह तथा पहचान मानी जाने लगी है। अपने मित्रों को धारा-सभाओं, कचहरियों और कालेजो में अपनी मातृ-भाषा में बात-चीत करने के लिए प्रेरित कर सकना हम लोगों के लिए कठिन हो रहा है। हम लोग इस बात के लिये दलील देते रहे हैं कि विश्व-विद्यालयो की शिक्षा मातृ भाषा के माध्यम द्वारा हो सकती है, तथा प्रान्तों का विभाजन भाषा के अनुसार होना चाहिये, तथा कचहरियों की कार्यवाही मुवक्किलों की समझ मे आने वाली भाषा मे होने से देश मे न्याय की व्यवस्था अधिक सुचारु रूप से हो सकती है। यह बात हम लोगों को अखरती नहीं कि इन कामों मे विदेशी भाषा का प्रयोग क्यों किया जा रहा है।

जहा तक भाषा का सबध है वहा पर जहा ऐसी स्थिति है, वहाँ सस्कृति के क्षेत्र मे स्थिति और भी खराब है। हमे यह विश्वास करने की शिक्षा दी गई है कि हमारे देश मे चित्र कला नहीं थी, कला का अस्तित्व नही था तथा ज्ञान पश्चिम से ही प्राप्त हो सकता है, पूर्व से नहीं। यथार्थवादी शैली मे वस्तुओं के अंकित करने की प्रवृत्ति आध्यात्मिक कला की प्रवृत्ति को निस्तेज कर रही है। देश मे स्थापत्य में भारी परिवर्तन हुआ है। जिस प्राचीन शैली ने जयपुर. उदयपुर, दिल्ली, आगरा, बीजापुर, औरंगाबाद, तजौर और मदुरा सरीखे नगरों को सौन्दर्य प्रदान करने मे योग दिया था, उसका लोप हो गया है, और उसे तुच्छ समझा जाता है। प्राचीन मदिरों के स्थापत्य,

तक्षण शिल्प और चित्र कला का अध्ययन नहीं किया जाता । वल्कि उनकी उपेक्षा की जाती है। कांग्रेसी मंत्रियों ने भी इन तक्षण शिल्पों के प्रचार के लिए पाच हजार रुपये तक भी व्यय करना उचित नहीं समझा। तंजौर के पुस्तकालय में जो हस्तलिखित ग्रंथ हैं, जो शताब्दियों की उपेक्षा के पश्चात् विनष्ट होते जा सकते हैं, उनका कब पुनरुद्धार होगा, इसका कुछ पता नही। इन सब पाण्डुलिपियों की शुद्ध प्रतिलिपि करने मे भारी और प्रवल उद्योग की आवश्यकता होगी जिससे गलते हुए कागज और ताड़ पत्रों का कूड़ा दिखाई पड़ने वाली हस्तलिखित पुस्तकों मे छिपे हुए ज्ञान-भंडार को जनता तक पहुँचाया जा सके।

आप जहा भी जाइए आपको प्राचीन शिल्प की श्रेष्ठता और गौरव समय वा विदेशियों के कला-साहित्य के विध्वंस-कार्य से अक्षुण्ण और अप्रभावित मिलेगी। हम कहा से प्रारम्भ करेंगे? इन अद्भुत कार्यों का अध्ययन कहा समाप्त करेंगे? प्राचीन आदर्शवाद की ये विशाल कीर्ति-स्तम्भ जो पत्थर और ईंटो के बने हुये हैं, शताब्दियों अनवरत परिश्रम कर निर्मित किये गये हैं। कुलशेखर मडप से और त्रिवेन्द्रम के मंदिरों की छतों मे बने हुए अब धुँधले मात्र बचे हुये चित्रों से आरम्भ कर मदुरा के विशाल स्थापत्य और तजौर के अपूर्व कमनीय भास्कर शिल्प को देख कर और वहा से हैलीबीडी और वेलूर जाकर जहा पत्थर का काम देश की एक महान विस्मयजनक वस्तु है, भोजदोन के सोने चादी के तार के बारीक कामों की याद कर और तंजौर, मैसूर, लेपाक्षी, वेलूर तथा हैलीवीडी में बने भव्य नन्दी का तुलनात्मक अध्ययन कर हम चकित हो जाते हैं कि इन कामों को पूरा करने में कितना समय लगा होगा और उनके बनवाने मे कितना अधिक धन व्यय हुआ होगा।

लेपाक्षी में मंदिर की छत भव्य चित्रकारी से भरी है जो चार या

पांच सौ वर्ष पुरानी हो जाने पर भी अक्षुण्ण रूप से संरक्षित हैं और जिनमे राजाओ और संतों के जीवन के अत्यधिक प्रभावशाली दृश्य रंग और रूप मे अकित किए गए हैं। इनके अतिरिक्त लेपाक्षी के स्तम्भ वास्तु कला के अलौकिक नमूने हैं जो विशाल आकार के हैं और जमीन पर के नाचते हुए खंभों पर आधारित हुए विना ही छत से लटके हुए हैं। ताड़पत्री और पेनुगोंडा मंदिरों से भरे हुए हैं जो उस परिश्रम और व्यय के प्रमाण हैं जो किसी समय कला और स्थापत्य मे अवश्य ही लगाया गया होगा और वे अपेक्षाकृत उस विध्वस का भी परिचय देते हैं जिसमे वे आज के अधिकारियों द्वारा असभ्य उपेक्षा के कारण हाल के समय में पड़े हुए हैं। कल्पना का साहस, कार्य-निर्वाह की विशदता, तथा सूक्ष्म रचना का गभीर प्रेम और कारीगरी की सर्वोच्च पवित्रता, शक्ति और व्यंजकता, स्थापत्य संबधी सौन्दर्य के साथ वैज्ञानिक कौतूहल का सयोग तथा मदिरों के मानव नेत्रों को सूझ न पड़ सकने वाले अत्यधिक अंधेरे कोनों मे अत्यधिक भव्य चित्रकला और भास्कर शिल्प के लिए इन विभिन्न संस्थाओं को भारत में प्रथम स्थान प्राप्त है।

वेलूर और हैलिबीडी में मंडपों के प्रस्तर-स्तम्भों को केवल एक भीगे कपड़े से गीलाकर देने की आवश्यकता है जिससे वे चारों ओर की वस्तुओं की प्रतिविम्बित (reflected) और विवर्तित (refracted) करने का अत्यधिक विचित्र दृश्य उपस्थित करती हैं। एक में का देखा हुआ प्रतिबिम्ब (reflection) और विवर्तन (refraction) दूसरे मे देखे हुए से बिलकुल ही भिन्न होता है। मंदिर के अंदर, जो घना अधकारमय है, विदर्भ स्वामी की मूर्त्ति एक बहुत प्रचड बिजली बत्ती के प्रकाश मे ही देखी जा सकती है, वह भी केवल कुछ भाग ही, क्योंकि एक सिरे से दूसरे सिरे तक वह ३० फीट लंबी है। पश्चिम की ओर बढते जाने पर हम बीजापुर पहुँचते हैं

जहां पर मनोहर गुम्बज तथा मन्दस्वर में वार्तालाप करने वाला छज्जा है और बादामी और उदवल्ली की गुफाओं में पहुंचते हैं जिनका हाल में ही अनुसंधान हुआ है। हैदराबाद में वारंगल के मंदिर का भव्य स्थापत्य और एलोरा तथा अजंता की गुफाएं तथा रचना जिन के आधिपत्य का सौभाग्य निजाम सरकार को प्राप्त है तथा सब के अतिरिक्त एलीफंटा की गुफाएं जिनका सौष्ठव कल्पनातीत है, दर्शनीय हैं अजंता की २७ गुफाओं पर विचार कीजिए जिनके तैयार करने में शताब्दियां लगी होंगी, और बताइये कि कौन कल्पना कर सकता है कि इनके निर्माण में कितना धन व्यय किया गया होगा! धन का विचार नहीं रक्खा जाता था। उस सेवा-कार्य की कल्पना कीजिए जो इसमें लगाया गया होगा। कलाकार और शिल्पकार योजनाओं और तख़मीनों, टेंडर और ठेकों, तथा रुपये के निश्चित पावने और निश्चित समय में काम कर देने की प्रतिज्ञा द्वारा अपना कार्य नहीं करते थे। वे अपनी आत्मा को संगीत, पत्थर और रंग में डाल देते थे और तब अपने कार्य की पूर्त्ति में आह्लाद का अनुभव करते थे। वे प्राचीन काल में अपनी निजी आत्मानुभूति लक्ष्य रखते थे, न कि धन संग्रह करने का। ज्ञान विक्रय की सामग्री नहीं था। पुस्तकें व्यापार की सामग्री नहीं थीं। संस्कृति और विद्वत्ता की प्राप्ति के लिए धन की प्राप्ति आकर्षण नहीं था।

हैं बल्कि अलौकिक हैं। अंत में आगरा और दिल्ली के महलों की शोभा के पास पहुँचते हैं। ताज महल की भव्यता, रुचि की कमनीयता, सूक्ष्म रचना की सावधानी, उसमे लगे हुए श्रम और उसके मूल में स्थिति कल्पना इसके रहस्यों का उद्घाटन करने के सभी प्रयासों को विचलित कर देती है। इस का प्रतिद्वन्दी हमे केवल अजंता मे मिल सकता है, जो विस्तृत घुमावों और दीर्घ मेहरावों सहित निर्मित किया गया है और जिसकी शोभा और विस्तार का देश भर मे कही जोड़ नहीं है। पूर्व की ओर जाने पर हम जगन्नाथ, भुवनेश्वर और कनरक के मंदिरों को देखते हैं जो अपने ही अनुरूप हैं।

इस विद्या का किस प्रकार जन्म हुआ था? इन सब की प्रेरणा कहा से मिलती थी? वे विद्वान कहा है जिन्होंने इनकी योजना तैयार की, वे शिल्पकार कहा हैं जिन्होने इन योजनाओं को कार्यान्वित किया? इन सब बातों का अध्ययन यथार्थ राष्ट्रीय शिक्षा के कार्य-क्रम का विषय है। यही अद्भुत बाते हम चिकित्सा, चित्रकला, काव्य और नाटक के क्षेत्र में देखते हैं, हम लोगो की नाट्य कला अंग्रेजी नाट्य कला की अपेक्षा कम से कम आठ सौ वर्ष पुरानी है। चिकित्सा और शल्य विज्ञान के क्षेत्र मे हमारे पूर्वजो ने हजारों वर्ष पहले इतनी अधिक प्रवीणता प्राप्त कर ली थी जितनी पाश्चात्य विद्वानो और वैज्ञानिको को केवल छः दशक पहले प्राप्त किया है। वास्तु-विद्या, चिकित्सा, कानून तथा साहित्य के इन विभिन्न विभागो की कला और विज्ञान के रहस्यों का हमे उद्घाटन करना पड़ेगा। यही वास्तविक राष्ट्रीय शिक्षा होगी। राष्ट्रीय विद्यापीठ के स्नातको के रूप मे जीवन मे हम लोगों का कर्त्तव्य केवल उन धंधों का करना नही होगा, जिन के लिए हमने प्रमाण-पत्र प्राप्त किया है, बल्कि ज्ञान और विद्या के उन क्षेत्रो का अनुसधान करना होगा जिन्होंने प्राचीन काल मे बहुत उच्च कोटि की श्रेष्टता प्राप्त कर ली थी। किन्तु कुछ ही शताब्दियो पहले जिन की उन्नति अवरुद्ध

हो गई, विदेशी आधिपत्य के अन्दर कोई देश राजकीय व सरकारी संरक्षण के अभाव के कारण संस्कृति और सामाजिक नियम की कला और नागरिक सस्थाओं के क्षेत्र में उतना ही अवनत होता है जितना विशुद्ध राजनीति के क्षेत्र मे।

राजा केवल ऐश्वर्य और भोग विलास की प्रतिमूर्ति नहीं होता। और न कानून तथा व्यवस्था के लिए साधन मात्र होता है। बल्कि समाज का प्रधान होता है। तथा प्रथा और परम्परा पर आधारित मामलो पर लोगों का उपदेशक तथा परामर्शदाता होता है। जहा पर प्रथाए अटल हो जाती हैं और स्थिर तथा अपरिवर्त्तनीय व्यवहार के रूप में स्थापित हो जाती हैं वहाँ उन्नति रुक जाती है। विदेशी शासकों के आधीन केवल प्रथानुसार कानून मे ही यह बाधा नहीं उठानी पड़ी है बल्कि समाज की परम्परा और अधिकार में हस्तक्षेप करने की शासकों की अनिच्छा के कारण अनेक सामाजिक मामलों में भी उठानी पड़ी है यदि लोकमत की प्राचीन प्रतिमूर्ति के अस्तित्व का बिलकुल लोप नहीं हो गया है तो कम से कम वह भूतकाल का केवल चिन्ह अवश्य रह गई है, इस प्रकार प्रथा निर्जीव बन गई है। और ज्ञान तथा विद्वत्ता गतहीन हो गए हैं, विदेशी सभ्यता के आगमन से केवल नई नफासत और नई शैलिया नही प्रचलित होती हैं बल्कि प्राचीन ज्ञान उपहास की वस्तु बन जाता है। और वह पक्षपात तथा अवगुण तक का शिकार बना दिया जाता है। ज्ञान, विद्वत्ता तथा गवेषणा की धाराओं के साथ जो नाला शताब्दियों तक बहता आ रहा होता है उसके प्रतिरोधी और प्रतिकूल धाराओ के प्रवाह से टक्कर खाने के कारण उसमें अचानक बाधा उपस्थित होती है, जिसका परिणाम यह होता है कि उनकी प्रगति ही नहीं रुक जाती बल्कि वे रुख जाते हैं और वर्षों की जमा मैल और कूड़े करकट से भर जाते हैं। ऐसी परिस्थितियों मे हमारा कर्त्तव्य यह है कि हम कूड़ा-करकट उखाड़ फेंकें और यह पता लगावें कि प्राचीन

अध्याय १७

ग्रामोद्धार

यह क्या है, क्या नहीं है ?

ग्राम-सुधार के प्रेमी उत्साही नवयुवक प्रायः ग्रामोद्धार की समस्याओं के संबंध मे सलाह और तजवीज पूछते हैं। इस समस्या का रूप और उसकी स्थिति ऐसी वाते हैं जिनका गभीरता पूर्वक अध्ययन करने की आवश्यकता है जिससे इसके हल के सिद्धान्त ठीक रूप से उसी प्रकार ग्रहण किए जा सके जिस प्रकार ठीक तरह इलाज करने के लिए रोग की जड पकड़ी जाती है।

हम लोगों के गावों मे क्या खराबी आ गई है ? निश्चय ही आज गाव के लोगों को दुनिया का पता अधिक रहता हैं, अच्छा पहनते हैं और राष्ट्रीय सवध की समस्याओं पर अपने पूर्वजो की अपेक्षा अधिक योग्यता से बात-चीत और तर्क कर सकते हैं। फिर भी यह सब जगह आवाज उठ रही है कि ग्राम-सुधार एक अलग ही समस्या है, और इसके अनेक पहलुओं का अध्ययन करना चाहिये और उस को हल करना चाहिये जिससे राष्ट्रीय जीवन की यथार्थ रूप से और ठीक तरह नींव डाली जा सके। जाच और सावधानी, विश्लेषण तथा विवेचना के लिए यह माग एक पीढी पहले गैरसरकारी राजनीतिज्ञो द्वारा उत्पन्न हुई थी, इसमे बाद मे सहयोग आन्दोलन के नेताओ ने भाग लिया और उसके बाद कुछ उत्साही सरकारी अफसरो ने इस पर जोर दिया।

प्रान्तीय सरकारों मे कांग्रेस मंत्रिमंडलों के स्थापित होने पर ग्रामोद्धार और उसकी समस्याएं विशेष रूप से सामने आईं। लोगों ने तरह तरह की योजनाओं का प्रस्ताव करना प्रारम्भ किया। सहगामी धंधे जैसे मुर्गी पालना, शहद की मक्खी पालना, शिल्प जीवन की उन्नति, विशेष कर कताई और बुनाई, कलों का लोप जिससे हाथ से चावल की कुटाई, कोल्हू से तेल पेरने, गुड़ बनाने, हाथ से कागज़ बनाने, हाथ से आटा पीसने इन सब बातों की ओर लोगों का ध्यान गया। कुछ अधिक नरम विचार के लोगों की पुकार यह हुई कि खेती के लिए अच्छा बीज, अच्छी खाद, खेती की उपज की बिक्री का अच्छा प्रबंध और अधिक कीमत होनी चाहिये। सरकारी विभागों ने लोक-शिक्षा और प्रचार के लिये जिन बातो को उठाया, वे हैं मैजिक लैंटर्न द्वारा लोक-प्रिय शिक्षा, ध्वनि-क्षेपण (ब्राडकास्टिंग) द्वारा विचारों का तीव्रता से प्रसार, सिनेमा द्वारा उन्नति का दृश्य-प्रदर्शन, चलते-फिरते व्याख्यान, चलती-फिरती दूकानें और विज्ञप्तियों की भरमार।

इस प्रकार विचित्र प्रकार के विचारों और आदर्शों के बीच युवक प्रचारक और वयस्क उत्साही व्यक्ति भ्रमित हो जाते हैं और कोई मार्ग ढूंढ़ नहीं पाते और यह नहीं तै कर पाते कि ग्राम-सुधार के उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के लिए कौन सा काम पहले हाथ में ले। इस लिए यह उचित है कि सम्पूर्ण समस्या की सभी जटिलताओं पर विचार किया जाय और एक सरल सिद्धान्त निकाला जाय जिसके द्वारा हमें उन गुत्थियों को सुलझाने में सहायता मिले जिनमें गांव के लोग और उनकी बाते उलझ गई हैं।

हम इस प्रश्न को फिर दुहराते हैं कि हम लोगो के गावों में क्या खराबी आ गई है। इसका जवाब चाहे जो हो, वह निश्चय ही सर्वांगीण होना चाहिए जिसमे ग्राम जीवन का पूर्ण रूप से विवेचन

हुआ। सन् १९१७ ई० मे रूस ने सोवियट प्रजातन्त्र स्थापित किया। भारत मे उसी वर्ष होम रूल (स्वशासन) आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और सन् १९२१ ई० मे इसने तेज़ी से स्वराज्य की माग पेश की। इस तरह इगलैंड तो वास्तविक प्रजातन्त्र की प्राप्ति की ओर तेजी से क़दम बढ़ाता जा रहा है और भारत मन्द गति से विदेशी शासन से अपना छुटकारा करने का प्रयत्न कर रहा है। इस प्रकार भारत के राजनीतिक आन्दोलन इगलैंड के समकालीन आर्थिक उथल-पथल के प्रतिबिम्ब मात्र हैं। इगलैंड अर्थ-शास्त्र मे जहा तेज़ी से पग बढ़ा रहा है वहा भारत इगलैंड की पिछली पीढी की राजनीति के लहँगे की डोर मे लटका हुआ है।

इसलिए इस मे आश्चर्य क्या है जब रूस से यहा तक पहुँचने वाली दासता से छुटकारा पाने की कहानिया सुनकर हम मुग्ध हो जायं? किन्तु नकल करने से हमे कुछ भी नही मिल सकता। इगलैंड का समाजवाद वहा की ही नवजात औद्योगिकता के अत्याचार के प्रति प्रतिरोध है। रूस का साम्यवाद शताब्दियो के निरकुश शासन का आवश्यक परिणाम है। प्राचीन या नवीन सभी इतिहास मे एक-तंत्र शासन के विरुद्ध सशस्त्र और खूनी क्रान्ति निश्चित बात रही है। हाँ यह जरूर बड़े सदेह की बात रही हैं कि इस से क्रान्तिकारियो को लाभ हुआ या नहीं, इस से एक नये रामराज्य का श्रीगणेश हुआ वा नहीं, इस से उन लोगो की सामाजिक और आर्थिक अवस्था मे सुधार हुआ वा नहीं जिन के लिये खून की नदिया बहाई गई। यदि प्रत्येक क्रान्ति से उस का अभिलषित उद्देश्य पूरा हो तो उस के बाद फिर दूसरी अनेक क्रातियों की जरूरत न पड़े। इसलिये किसी क्रान्ति की योजना और प्रचार करने के पहिले, वह चाहे हिंसा के सिद्धान्त पर हो वा अहिसा के, उन लोगों को, जो दुख झेलती हुई जनता के हित के लिए अपना सर्वस्व त्याग करने के लिए तैयार हों, यह विचार कर लेना

किया गया है, वह ग्राम-जीवन जो इसके अभ्युदय काल में था, वह ग्राम जीवन जो सुव्यवस्थित, सुनिर्मित राष्ट्रीय जीवन की वास्तविक नीव रहा। देश पर होने वाले विदेशी आक्रमणो ने हमारे ग्राम-जीवन की समान गति को उस समय तक प्रभावित नहीं किया था, जब तक कि पाश्चात्य राष्ट्रों ने हमारे देश मे पैर नहीं रक्खा। उस समय भी हम लोगों का ग्राम-जीवन तब तक अव्यवस्थित होना प्रारम्भ नहीं हुआ जब तक कि साम्राज्यवाद के बीज अपने दुहरे अंकुरों अर्थात् उद्योग-बाद और सैनिकवाद के साथ भाप के इजिन के आविष्कार और सभी हस्तशिल्पों मे यान्त्रिक बल के प्रयोग रूप मे न पनप उठे। इस विषय का विस्तृत वर्णन गाधीवाद बनाम समाजवाद, यंत्र बनाम हाथ की शक्ति, आत्म-शक्ति बनाम पाशविक शक्ति से सम्बन्ध रखने वाले निबंधो मे किया गया है। इसलिए उन सब तर्कों का दुहराना यहां पर आवश्यक नही है। किन्तु एक या दो पैरा में सरसरी निगाह डाली जायगी और साराश दिया जायगा। अंग्रेजों द्वारा भारत की विजय बहुमुखी हुई, वह केवल भूमिगत वा राजनीतिक ही नहीं हुई है, बल्कि औद्योगिक और व्यापारिक भी हुई है किन्तु इनमें सफलता प्राप्त करने के लिए शिक्षा और संस्कृति सम्बन्धी भी हुई है। यदि मुगलों ने भारत को विजित किया तो वे यहीं बस गए, और अपनी कला, अपने दर्शन, और अपनी सस्कृति का हम लोगों की कला, दर्शन और सस्कृति से संयोग कर दिया जिससे हम लोगो की राष्ट्रीय सम्पत्ति विस्तार और परिमाण मे समृद्ध हुई। ब्रिटेन ने इसके विरुद्ध किया है। उसने अपनी व्यापारिक वस्तुए, अपनी भाषा और साहित्य, अपनी परीक्षाए और उपाधियाँ, अपनी सस्कृति और आदर्श हम लोगों के ऊपर लाद दिया है। फलतः भारत के गाव उजड़ कर कस्बों में जा बसे हैं। हाथ की करीगरी की जगह कलों ने ले ली। कौशल के श्रम की जगह कौशलहीन श्रम उत्पन्न हुआ, श्रम अब पूजी नहीं रह

गया, वह एक व्यापार की वस्तु हो गया, वह एक कौशल-हीन इकाई रह गया जिसमे व्यक्तित्व, लचक, और उन्नति तथा विकास के सामर्थ्य का अभाव है।

लंकाशायर और बरमिंघम, डंडी और लिवरपुल के कपड़े और औज़ार, मोजे और नमक के व्यापारों के बाद अंग्रेजी किताबो का व्यापार भी चमका जो शायद भारत के साथ ब्रिटेन का सब से बड़ा व्यापार है, उसके बाद कानून और कानून-निर्माण का व्यापार आया। इस प्रकार भारत के बाज़ार, भारत की कचहरियां, कालेज, और धारा-सभाएं भारतीयों को हुकूमत के ज़ोर से नफ़ासत और कपड़े, कानून और संस्थाएं तथा संस्कृति और शिक्षा प्रदान करने वाली बन गईं। गाव के लोगों ने कस्बों मे आकर बसते जाने और नई सभ्यता ग्रहण करते जाने के लिए जी जान से प्रयत्न करना प्रारम्भ किया। जिस प्रकार किसी समय योरोपीय सभ्यता के आदिम काल मे इगलैंड पर रोम साम्राज्य का अधिकार होने पर वहा रोम की प्राचीन संस्कृति ही सर्वत्र व्याप्त हो गई थी उसी प्रकार ब्रिटेन की सस्कृति भारत मे सर्वत्र दिखाई पड़ने लगी।

इन नए विषैल विचारों के आगमन का क्या परिणाम हुआ है? विजित जाति की स्वाभाविक महत्त्वाकाक्षा राजनीतिक उच्च पद प्राप्ति की होती है, उसके लिए चाहे अति घृणित और दासता-मय संघर्ष भी क्यो न करना पड़ जाय। पुरानी व्यवस्था नई व्यवस्था के सामने झुक गई। खेती के प्रति अनुरक्ति शीघ्र चली गई। ग्रामीण लोगों के लिए नागरिक जीवन एक अपरिहार्य आकर्षण बन गया है। सादा जीवन और ऊंचे विचार का सिद्धान्त पलट कर ऊचा जीवन और सादा विचार हो गया है। पुराने उद्यमी जीवन के स्थान पर आरामतलबी की चाह उत्पन्न हो गई है। सरकारी नौकरियो की चाह ने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय दोनो प्रकार की स्वतन्त्रता की प्राचीन भावना को नष्ट कर दिया

है। विदेशी भाषा के अध्ययन की चिन्ता में देशी संस्कृति का लोप हो गया है। देश की परम्परायें तक भुला दी गई हैं। वर्तमान समृद्ध और आह्लादपूर्ण भविष्य का अकुर-स्थल बनने के स्थान पर स्वयं ही अतिम लक्ष्य बन गया है।

पहले जहा विवाद के स्थल पर ही तुरन्त जल्दी मे ही न्याय कर दिया जाता था, उसकी जगह शानवान वाली कचहरिया खड़ी हुई हैं जिनमे कायदे कानून की पाबदी के बनावटी तरीके बर्ते जाते हैं और उनमे व्यक्तिगत तत्व का अभाव होता है तथा वे कृत्रिम सी होती हैं। शिक्षा फौजी व्यवस्था हो गई है और न्याय का पालन अवनत होकर केवल कानून का पालन रह गया है जिसके सिद्धान्त विदेश से आए हैं। प्रथाए निर्जीव हो गई हैं और उनका विकास रुक गया है। न्याय के मन्दिर मे मुकदमों का ढङ्ग जुए का सा हो गया है। झूठ कहना फायदे की बात हो गया है। सच्चाई की पूछ नहीं रह गई है। गवाही एक कहानी के रूप मे नहीं दी जा सकती, बल्कि वह धूर्त वकील द्वारा जिरह कर असम्बद्ध प्रश्नों द्वारा मुह से निकलवाए उत्तरो के टुकड़े जोड़-जोड़ कर बनाई जाती है। परिणाम स्वरूप जो बुरा है वह भला दिखाई पड़ने लगता है, इस कारण वादम् (अभियोग) के ज़ोर पर नही बल्कि वादी (मुद्दई) के जोर पर जीत होती है।

विदेशी शासन की अनुरक्ति और भक्ति मे प्रतिस्पर्द्धा के कारण लोगों में ईर्षा द्वेष की भावना उत्पन्न हो गई है और उनमें वर्ण और सम्प्रदाय की एक गहरे और विषैले रूप की मनोवृत्ति उत्पन्न हो गई है। दुर्भावना बहुत अधिक जागृत हो गई है, और राष्ट्रीय जीवन के सब रूपों मे, विशेष कर चुनावो और नौकरियों मे तनाव और दूषण फैल गया है। ग्राम शिल्प नष्ट कर दिए गए हैं। कले प्रधान शक्ति बन गई हैं। अधिकार ने कर्तव्य का, प्रतिस्पर्द्धा ने सहयोग का और घृणा ने प्रेम का स्थान ग्रहण कर लिया है। गाव के लोगो मे एक

विषाद और निराशा की भावना छा गई है जो महसूलों के बढ़ने, आमोद-प्रमोद की कमी होने, प्रकृति की अनिश्चित व्यवस्था और मनुष्यों की अविश्वस्तता विलम्बित आशाओं और भग्न आकांक्षाओं के कारण उत्पन्न हुई है। समाज में जीवन के ऊंचे दर्जे तक पहुंचने की अनवरत अभिलाषा ने इस 'आदर्श वाक्य' को जन्म दिया है कि "अपने जीवन-यापन का मान-दण्ड ऊंचा करो" किन्तु वह ऊंचे होने के स्थान में नित्य नीचे गिर रहा है। मज़दूरी श्रम पर हावी हो गई है, धन ने मेधा को पीछे कर दिया है। यदि क्लाइव और हेस्टिंग्स द्वारा की गई लूट ने इंगलैंड में मजदूरी की दर बढ़ा दी तो यह कोई दलील नहीं है कि वैसा ही भारत में माग की जाय। देहात और शहर के स्वार्थों में उसी सरकार द्वारा भेद उत्पन्न कर दिया गया है जो देश का शासन कर रही है। आशा का संचार उसी समय हो सकता है जब कि ला (कानून) कालेज तोड़ दिए जाएं, ग्राम-पंचायत स्थापित करली जाय, भेद को मिटा कर संघ-भावना उत्पन्न की जाय, औद्योगिक और व्यापारिक संरक्षण हटा दिए जाएं, जीवन-निर्वाह के साधन इस प्रकार बढ़ाए जाएं जिससे भूखे मरते और नंग-धड़ंग लोगों को काम दिया जा सके।

की बात उठाने में हमने केवल राष्ट्रीय समस्याओं को दुहराया है। यह सच है, क्योंकि क्या भारतीय राष्ट्र गावों में ही नहीं रहता? जहा स्थूल रूप से यह कहना ठीक है कि हम अपने राष्ट्र का पुनर्निर्माण बिल्कुल नींव से ही नहीं कर सकते, वहा यह भी कहना ठीक है कि समस्या रूप और दृष्टिकोण मे उतनी ही मनोवैज्ञानिक है जितनी भौतिक, या आर्थिक। ग्रामोद्धार का एक अभीष्ट राष्ट्रीय आदर्शों को ठीक रूप में अनुभव करना है। यही कारण है कि राष्ट्रीय अधःपतन के विवेचन के लिए इतना विस्तृत लेख लिखा गया है। हमारे देश की बुनियादी समस्याओं के लिए राष्ट्रीय शक्ति से सयोजनात्मक उपयोग मे एक भारी बाधा वह गर्त्त है जो वर्गों और जनता के बीच उत्पन्न कर दिया गया है। वर्गों के लोग गावों मे जाने के अनिच्छुक हैं और जब वे जाते हैं तो अपने बधुओं की समस्याएं एक अनुग्रह रूप से देखते हैं।

अतएव ग्रामोद्धार के लिए पहला काम है कि ऐसे कार्य-कर्त्ताओं को ढूँढा जाय तो अनुग्रहकर्त्ता वा बड़े आदमियों के रूप मे कार्य न करें। वे देहात के लोगो मे से एक होने का अनुभव करें, उनके दुख मे, बीमारी मे एक हों, सेवा और त्याग मे भी एक हों। क्या आप कीचड़ मिट्टी और धूल तथा बीमारी मे रहने वाले ग़रीब आदमी के लिए दिल मे दर्द अनुभव करते हैं? यदि ऐसा है तो क्या आप उनकी जरूरतों और देन मे मददगार होने के लिए तैयार हैं? आप गावो के अतिथिगृह मे जाते हैं, खपरैल में जाला लगा होता है, फर्श मे गड्ढे बने रहते हैं। क्या कभी झाड़ू लेकर आप जाले साफ करते हैं, और कुदाल लेकर फर्श बराबर कर देते हैं? पास ही किसी के गिरते हुए घर के खभों को आप बदलने की कोशिश करते हैं? क्या दूध के लिए रोते हुए किसी बच्चे के लिए दो आसू बहाते हैं और उसको खिलाने का प्रयत्न करते हैं? एक शब्द मे क्या आप उन लोगो की सेवा करने के लिए दौड़ते हैं जो मुसीबत में होते हैं और

आप लोगो से अपने को उनके दुख और यातना का साथी बनाने को कहते हैं ? हम सब असिसी का संत फ्रासिस वा साबरमती का महात्मा गाधी नहीं बन सकते, लेकिन हमें अपने को आकाश से उतरा हुआ मनुष्य नहीं समझना चाहिये, जो गरीब और असहाय, भूखे दूखे और नंगधड़ंग लोगों पर अनुग्रह प्रकट करने के लिए पृथ्वी पर उतरा हो।

ग्रामोद्धार के लिए गौण सहायक धन्धों की आवश्यकता है जो ग़रीब मजदूरों और किसानो की अपर्याप्त मजदूरी के अलावे कुछ अतिरिक्त आय करा सकने मे सहायक हो वा उनकी बेकारी के समय काम दे सके। साग-सब्जी बोना, खेती, मधुमक्खी पालना, सूत कातना, बुनना, काग़ज बनाना, आटा पीसना—ये और अन्य सैकड़ो धन्धे ढूंढ़े जा सकते हैं जो ग़रीबो की आवश्यकता पूर्ति कर सके। किन्तु कस्बे वालों का यह कर्तव्य है कि वे कुर्सी की जगह गलीचा, लोहे की कलम की जगह नरकल की कलम, लकाशायर के मिलों की जगह खद्दर की धोती, जापानी खिलौनों की जगह देश में बने खिलौने इस्तेमाल करे। गाव संस्कृति के केन्द्र, कला के स्रोत, और शिल्प के आवास हैं और यदि शहराती लोगो की रुचि गाव की बनी चीजो के ग्रहण करने की न हो, तो गाव वालो को रेडियो पर यह कहने से क्या फायदा कि उन्हे प्रति दिन स्नान करना चाहिए, जिसके लिए उन्हें पानी की आवश्यकता है, वा यह कि उन्हे सफाई से रहना चाहिए जिसके लिए उन्हे भर पेट भोजन की आवश्यकता है। भूखा आदमी रूखा आदमी होता है, और रेडियो से भी उसी प्रकार उदर की पूर्ति नहीं हो सकती जिस प्रकार मतो (वोटों) से।

गाव की स्वतत्र इकाई को तुरन्त पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता है। यह पंचायत, निर्णायक समिति और सहयोग समिति होनी चाहिए। इसको नैतिक अधिकार का प्रयोग करना चाहिए, स्थानीय मामलों का

निवटारा करना चाहिए और कृषि की आर्थिक व्यवस्था का प्रवन्ध करना चाहिए। ये ही साधन हैं—जिनको आप चाहे सस्था नाम दे लें—जिन से ग्राम स्वावलम्बी वन सकते हैं। ग्राम-वाचनालय से देश-विदेश के नित्य के घटना-चक्रों का हेर-फेर गाव वालो को मालूम होता रहता है। समाचार पत्र उनके मस्तिष्क का आहार उसी प्रकार देते हैं जिस प्रकार खेत और उसकी उपज पेट को भोजन देते हैं। पाठशालाए केवल किताबी संस्थाए नही रह जानी चाहिए जिससे वेकारी की वृद्धि हो। सुई से लेकर मोटर कार तक गाव वालो को वनाने दीजिए और तब कही पर भी अभाव व दुख न रह जायगा, वेकारी की समस्या कहीं नही रह जायगी। हम अपने बच्चों को आज-कल के स्कूलों और कालेजों मे न भेज कर वहुत अधिक धन की बचत कर सकते हैं जहा की शिक्षा महगी, अराष्ट्रीय और व्यर्थ है। यदि मूल के थोड़े बहुत फल को मनुष्यो की प्रारम्भिक आवश्यकताओं के लिए सहायक होने के लिए सचित रखना हो तो गाव के धन की खींच को पहले तुरन्त रोकना चाहिए। अपव्यय को रोकने के बाद अल्प व्यय की नीति ग्रहण करने की आवश्यकता है, जिससे कोई व्यक्ति अपनी हैसियत से बाहर न रहे, किन्तु उसके साथ ही राष्ट्र को अपना बस चलने पर पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए कि समाज के प्रत्येक स्त्री और पुरुष को निश्चित रूप से भोजन, वस्त्र, रहने के लिए मकान और सामान्य सस्कृति प्राप्त हो।

नगर वालो को इस बात के लिए तैयार हो जाना चाहिए कि उनमे से प्रत्येक, इस तथ्य के बावजूद भी कि वह कस्बे में रहता है, वास्तव मे गाव मे रह सकता है। एक नवयुवक की कल्पना कीजिए जो असल मे एक गाव मे रहता है किन्तु नित्य प्रातःकाल चाय पानी के लिए कस्बे मे जाता है, नित्य सायकाल सिनेमा, थिएटर के लिए जाता है, प्रत्येक दूसरे दिन बाल बनवाने जाता है, प्रत्येक सप्ताह

धुलाई की दूकान मे जाता है, प्रत्येक मास बाल कटवाने जाता है तथा जब-तब नाटक वा सरकस को देखने पहुंचता है। क्या वह गांव मे रह रहा है? वह अपने कपड़े लत्ते, सिलीसिलाई कमीज़ें, जूते, छाते सब कुछ कस्बे मे ही खरीदता है। इसी प्रकार कोई कस्बे का भी रहने वाला हो सकता है जो यथार्थ मे कस्बे में रहता हुआ भी गाव मे ही रहे जिस प्रकार गाव का व्यक्ति गाव में रहता हुआ भी कस्बे का रहने वाला हो। सारी समस्या मानसिक है, जिसमे प्रत्येक कस्बे और गाव के निवासी को प्रत्येक चीज़ की छानबीन करनी चाहिए जिसे वह खरीद रहा हो और इसका इतमीनान कर लेना चाहिए कि खरीदी जाने वाली चीजे देश की बनी हैं वा विदेश से आई हैं, गावों मे बनी हैं वा कस्बो में, हाथ की बनी हैं वा कलो की। और जो व्यक्ति ऐसी चीजे खरीदता है जो हाथ की और देशी सामग्री की बनी हो वह चाहे गाव मे बनी हो वा कस्बे मे, वही आदमी भारत के गावो का यथार्थ उद्धार करने वाला है—वह आदमी नही जो अपनी छुट्टी के संध्या समय को विद्यार्थी वा व्यवसायी रूप में व्यतीत करता है और एक वा दूसरे विषय पर विद्वत्ता-पूर्ण भाषण देने की योजना करता है। गावों की बात सोचिए और उसके धन्धों की सहायता कीजिए, आप ग्रामोद्धार के हितचिन्तक बन जाएगे।

अध्याय १८

शान्ति सेना

काग्रेस रूप प्राणी की आज्ञाओं को कार्यान्वित करने वाले अनेक अंगों मे एक स्वयसेवक दल है जिसे काग्रेस ने स्वीकार कर हिन्दुस्तानी सेवा-दल नाम दिया था। एक दशक से कुछ पहले यह एक पृथक और स्वतन्त्र रूप मे कार्य कर रहा था किन्तु बाद मे १९३१ ई० में यह सम्बद्ध सस्था बना लिया गया और इसे कार्य-कारिणी समिति के एक सदस्य श्री जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व मे कार्य करने का आदेश हुआ। परिणाम-स्वरूप इसे लगभग उसी दर्जे का रूप दिया गया जिस प्रकार अखिल भारतीय चरखा सघ (१९२५) अखिल भारतीय हरिजन सेवक-सघ (१९३३) तथा अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा समिति (१९३७) की स्थापना हुई थी अनेक अन्य काग्रेस सगठनों की तरह दल भी सविनय अवज्ञा के दिनों मे ग़ैरकानूनी घोषित कर दिया गया था और आन्दोलन के स्थगित होने पर उन्हीं की तरह इस पर से सभी प्रतिबन्ध हट गया था किन्तु इसकी पुनः स्थापना नहीं हुई।

हरिपुरा काग्रेस अधिवेशन ने राष्ट्रीय स्वयसेवक सगठन पुनः स्थापित करने का प्रश्न काग्रेस-अधिकारियों के सामने रक्खा था कुछ लोगो को आश्चर्य हो रहा था कि इसे निश्चित रूप क्यो नहीं दिया जा रहा है। महात्मा जी का बाद मे निकला हुआ शान्ति-सेना पर का लेख इस समस्या के सम्बन्ध मे खड़े हुए रहस्यों को हल कर देता है एक स्वय सेवक संगठन का उद्देश्य यह होना चाहिये और वास्तव

में सदा रहा भी है कि सेवा करे, व्यवस्था स्थापित करे और कांग्रेस के सत्य और अहिंसा का पालन करते हुए राष्ट्रीय सेना का कार्य करे, किन्तु यह स्पष्टतया अनुभव किया गया कि इन दोनों सिद्धान्तों का सेवा-कार्य करते समय सेना द्वारा केवल वर्दी की भाति प्रयोग नहीं होना चाहिये। बल्कि सेना में भर्ती होने के समय ही युवक पुरुषों के लिए यह वास्तविक प्रेरणा होनी चाहिये। सत्य और अहिसा काग्रेस द्वारा निर्धारित वर्दी नहीं है बल्कि वे स्वयंसेवक संगठन की अस्थि और पेशी, नस और रचना-शैली हैं। सेना यह है किन्तु यह राष्ट्रीय सेना का मध्य केन्द्र नहीं है जिसमें इसे समय आने पर रातों ही रात परिवर्तित किया जा सके जिस प्रकार हम लोगों में से जेल काटे हुए लोगो को गवर्नरो ने एक दिन प्रातः काल निमंत्रण भेजा और वे मंत्री हो गए। यह एक नई प्रकार की सेना का मध्यकेन्द्र होगा जिसके सैनिको को स्वराज्य के बाद भी काम करना पड़ेगा किन्तु पेटी और डडे के साथ नहीं तथा तलवार और बन्दूकों के साथ नहीं, बल्कि शरीर पर शान्ति के चिन्ह और हृदयो में त्याग की भावना के साथ हम इस योजना पर कुछ और विचार करेंगे।

सभी सेना इस आशा से संगठित की जाती है कि उसे मोरचे के मारू बाजे का सामना करना पड़ेगा। कुछ लोगो को रणभूमि देखने का भी अवसर नहीं मिल सकता और कुछ राष्ट्रीय पैमाने पर किए जाते हुए मनुष्य की पहली ही बध-लीला से वापस नहीं हो सकते। यह एक ऐसे दस्तावेज़ की तरह माना जा सकता है जिस पर ठीक तरह से स्टाम्प लगाया गया है और गवाही हुई है। दस्तावेज़ की मजबूती पर एतराज़ नहीं भी हो सकता है और उसे कचहरी में जाने की नौबत नहीं भी आ सकती है। ऐसी दशा में यह चुप-चाप से अभिप्राय को पूरा कर चुका रहेगा जिससे कोई विरोध न खड़ा हो। किन्तु यह कच-हरी मे भी लाया जा सकता है और नाजायज करार दिया जाकर फाड़

अत्यन्त उचित है कि इच्छित परिणाम पर पहुँचने के लिए कोई विशेष कार्य-क्रम लाभ-प्रद है वा नही और वह भी किस हद तक।

फलतः भारत मे हम लोगों के अध्ययन के विषय हैं:—जमीन के बटवारे के सिद्धान्त, उस की लगान में राज का भाग, प्रजा के प्रति राज के कर्तव्य, गाव और कस्बो में जीवन का संगठन, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से समाज की रचना प्राचीन, स्मृतिकारों और धर्माचार्यों द्वारा देश की जनता के सामने रक्खे हुए विद्या और धन के आदर्श, विदेशियो के भीषण आक्रमणो के कारण देश मे उत्पन्न हुई अधोगति, भारत पर अंग्रेजी आधिपत्य के अनेक पहलुओं के रूप, पूर्व के अधः पतन की पश्चिम की जिम्मेदारी, आधुनिक प्रभावों का द्रुतगामी रूप, जिन स्थायी सिद्धान्तो पर प्राचीन भारतीय समाज का निर्माण हुआ था, उसके पुनर्जीवित करने की आवश्यकता, युगो से प्रचलित उपज और खपत के भव्य सिद्धान्त का पुनरुद्धार, गाव, ज़िले, प्रान्त और देश भर के स्वतः पूर्ण रहने की व्यवस्था, जिस रूप मे हमारा देश अभी हाल तक रहा है, सुई तागे से लेकर रेशमी फीते और बाल में लगाने के पिन तक पाश्चात्य देशो की चीजे फेरी द्वारा गाव गाव के दरवाज़े दरवाज़े बिकने से पैदा हुई तबाही, ग्राम्य शिल्प की बर्बादी, पाश्चात्य देशो से मंगाई जाने वाली बस्तुओ पर, भारत और उसके सात लाख गावो की, सबेरे से शाम तक, पूर्ण निर्भरता, सामाजवादी वा किसी भी दूसरे वादी के लिए, इन सब बातो का पूर्ण विचार-पूर्वक अध्ययन पूर्वी देशो की सामाजिक व्यवस्था का सुधार करने के लिए, पाश्चात्य समाजवाद वा किसी भी दूसरे वाद के नपे तुले सिद्धान्त का प्रयोग करने के पहिले, अत्यंत आवश्यक है।

समाजवादी जिस मार्ग का अनुसरण करता है, उसकी अपेक्षा उस के सिद्धान्त के लिए यह वास्तव मे अधिक सुगम मार्ग है क्योकि सब से लम्बा मार्ग वास्तव मे निष्कंटक होता है। ईश्वर को धन्यवाद है कि उद्योग-

दिया जा सकता है और इस तरह रद्द हो सकता है।उस समय वह बेकार हो जाता है। इसी प्रकार राष्ट्रों की नियमित सेना के संगठन की बात है और उनकी सेनाओं के भाग्य-परिवर्तन इसी प्रकार होते हैं।

यह प्रश्न अक्सर पूछा गया है कि भारत जो अपने अहिंसा सिद्धात का इतना अधिक प्रदर्शन करते हुए मालूम पड़ता है क्या सेना और शस्त्र रक्खे बिना स्वराज्ज को सम्भवतः चला सकता है - इसी तरह यह भी पूछा जाता है कि जब हम कलों और कल से उत्पन्न वस्तुओं की बात घृणा पूर्वक करते हैं तो क्या हम रेलवे, टेलीफोन और तार के बिना काम चला सकते हैं। एक तर्क को बढा कर व्यर्थ रूप मे तूल देने से कोई परिणाम नही निकलता। सभी तार्किक निष्कर्षों को उपयोगी परिणाम नहीं कहा जा सकता। अपनी आलोचना मे भी हमे आपेक्षिक भावना रखनी पड़ेगी। विरोध की अवस्था मे राजनीति के साधन रूप मे अहिंसा को सिद्धात के रूप मे प्रयुक्त किया गया था यह उनको पार कर गया है और धीरे २ अपने विरुद्ध प्रचड असुविधाओं का मुकाबला करने की शक्ति और सामर्थ्य सिद्ध कर चुका है। यह राजनीति से प्रयुक्त एक नया दर्शन है। प्रबल ब्रिटेन के पाशविक प्रहारों के सामने ठहर सकने और उसे अधिकृत कर सकने की इसकी सामर्थ्य को एक बार हम लोगों ने देख लिया है इसलिए इसके प्रयोग के क्षेत्र को विस्तृत करने के समय हमे उन्ही आलोचना और सन्देहो को नहीं दुहराना चाहिए।

किन्तु यहा भूत-कालीन और सम-कालीन दोनों इतिहास भी अहिंसा की प्रबल शक्ति के प्रचुर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। प्राचीन काल के रोम मे दगलो के व्यवसायी मल्लो का युद्ध किस प्रकार समाप्त किया जाता था ? क्या यह सत्य नही है कि अहिंसा मे विश्वास करने वाला व्यक्ति उनको शान्त करने वाला होता था जो पाशविक शक्ति के इन दो अवतारों के मध्य कूद पड़ता था और इन दोनों मल्लों की तलवार के भोंक से उसकी मृत्यु हो जाती थी जिससे अन्त मे

नृशंस क्रीड़ा का रोम मे लोप किया जा सका? कुछ ही दिन पहले पंजाब मे एक घटना हुई जो हमारे उन बन्धुओं के स्मरण रखने योग्य है जो संदेह और विराग की भावना मे लिप्त हैं। पास पास रहने वाले दो परिवारो मे झगड़ा खड़ा हुआ जिसमें हथियार-बन्द युद्ध का रूप धारण कर लिया। वे घातक प्रहार करने ही वाले थे कि उनके बीच एक बारह बरस की लड़की कूद पड़ी जिसका दोनो दलो से समान रूप से ही रक्त का सम्बन्ध था और दोनों पक्ष वाले एक दूसरे पर जो प्रहार कर रहे थे वह उस पर ही हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि वह काल-कवलित हो गई और दोनों लड़ने वाले दल इस लज्जा के कारण पृथक हो गये और उन्होंने अपने झगड़ों को पाशविक शक्ति द्वारा नहीं बल्कि तर्क और;विवेक द्वारा निबटा लिया। अहिंसा की शक्ति सिद्ध करने के लिए कोड़ियों उदाहरण ऐसे ढूंढे जा सकते हैं जो हम लोगो के महाकाव्यों मे आते हैं। किन्तु हम एक ऐसे युग मे रहते हैं जब कि प्रहलाद की बात कवि की कल्पना का प्रेत कहकर मिथ्या बतलाई जाती है और विश्वास ने सन्देह और निराशा को स्थान दे दिया है।

किन्तु फिर लोग पूछ सकते हैं कि क्या अहिंसात्मक सेना के सदस्यों को भर्ती कर सकना सम्भव है जो क्रोधोन्मत्त भीड और पाशविक उपद्रवो का अपने को शिकार बनाने के लिए जान-बूझ कर तैयार होंगे। खैर हम पूछते हैं कि महायुद्ध में मोर्चे की खाली जगहों को भरने के लिए और अज्ञात व्यक्तियों द्वारा चलाई जाने वाली तोपों के मुंह में पड़ने के लिए लोग इतनी अधिक संख्या में भर्ती होते रहे हैं। वहा रक्त का सम्बन्ध रखने वाले दो समीपी परिवारों के झगड़ों को दूर करने का ऊंचा उद्देश्य भी नहीं था। क्या आप यह कहते हैं कि महायुद्ध की रणभूमि मे कोई व्यक्ति अपनी इच्छा से नहीं गया. सब क्षत्रिया भरती द्वारा ही भरती किए जाते थे? यह युद्ध की भीषणता को

उससे भी अधिक भयानक रूप मे चित्रित करेगा जैसा हम विश्वास करते हैं और इससे झगड़ो का निपटारा करने के लिए परम्परागत साधनों को ही मान्य करने के लिए दलील मिलती है। क्यों कि युद्ध की समाप्ति पर होने वाली प्रत्येक सधि अपने साथ एक नए युद्ध का बीज भी बोती गई। हम इस बात को आज देख रहे हैं। इसलिए हम लोगो के लिए युद्ध-कला परिवर्त्तित करने का यह समय है। शान्ति स्थापित करने मे युद्ध असफल हो गया है इसलिए हमें युद्धों को रोकने के लिए शान्ति के मार्ग की प्रतीक्षा करनी चाहिए। इसमे तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिए कि लोग शान्ति सेना मे भरती होने के लिए आवेगे। युद्ध और शान्ति दोनों में भर्ती होने पर युद्ध की आशंका समान रूप से है। कोई भी इस बात की कल्पना नहीं कर सकता कि जब सैनिक भर्ती होता है तो वह बारिकों में फुटबाल और गल्फ खेलने के लिए भरती होता है। वह अपना प्राण अपनी हथेली पर लेकर चलता है। इसी तरह शान्ति सेना मे भरती होने वाला व्यक्ति भी पूर्ण रूप से मृत्यु के लिए तैयार रहता है किन्तु उसमे यह भी प्रेरणा रहती है कि वह एक नया प्रयोग करने जा रहा है जो भूतकाल मे प्राप्त भव्य परिणामों को देखने पर भविष्य मे भी वैसे ही परिणामों की आशा से पूर्ण है।